महाभारत के पात्र ६
धर्मराज
युधिष्ठिर

महाभारत के पात्र : : ६

धर्मराज युधिष्ठिर

नानाभाई भट्ट

१९८९

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

प्रकाशक
यशपाल जैन
मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल
एन-७७, कनॉट सर्कस, नई दिल्ली-११०००१

•

नवीं बार : १९८०
मूल्य : रु०

•

मुद्रक
विजयालक्ष्मी प्रिंटिंग वर्क्स,
के-६, लक्ष्मी नगर, दिल्ली-९२

प्रकाशकीय

हमारे देश में और देश से बाहर भारतीय वाङ्मय के जिन ग्रंथों को असामान्य लोकप्रियता प्राप्त है, उनमें महाभारत का स्थान अग्रणी है। वह रत्नों की खान है। उसमें जितनी गहरी डुबकी लगायें, उतने ही मूल्यवान रत्न हाथ पड़ेंगे।

गुजराती के लब्ध-प्रतिष्ठ लेखक नानाभाई भट्ट ने महाभारत के ग्यारह प्रमुख पात्रों को चुनकर उनका परिचय प्रस्तुत किया है। उनकी लेखनी अत्यन्त प्रभावशाली है। अतः उनके चित्र न केवल सरस तथा सजीव हैं, अपितु पाठकों के मन पर गहरा असर भी डालते हैं।

इस पुस्तक में लेखक ने धर्मराज युधिष्ठिर के चरित्र पर प्रकाश डाला है। उसके पठन-पाठन से सभी वर्गों के पाठकों को लाभ पहुंचेगा।

यह पूरी माला ही सुपाठ्य और संग्रहणीय है। हमें पूरा विश्वास है कि इसे प्रत्येक परिवार में मनोयोगपूर्वक पढ़ा जायगा और इससे लाभ उठाया जायगा।

—मंत्री

भूमिका

दैनिक जीवन में मनुष्य जितना देखा जाता है, उससे कहीं अधिक प्रसंग-विशेष पर वह अधिक चमक के साथ देखा, परखा और पहचाना जा सकता है। इसलिए चरित्र-चित्रण वर्णनात्मक की अपेक्षा घटनात्मक अधिक प्रभावकारी होता है।

महाभारत का पात्र युधिष्ठिर चरित्र-चित्रण का एक आम नमूना है। श्री नानाभाई की समर्थ लेखनी ने युधिष्ठिर को चलता-बोलता हमारे सामने खड़ा कर दिया है। इनका जीवन पढ़ते हुए उपन्यास से भी अधिक तन्मयता का अनुभव होता है।

जाग्रत, साधनाशील, कर्त्तव्य-पालक और लोक सेवक के जीवन में ऐसे प्रसंग आते रहते हैं, जब वह क्षुद्रताओं से, मलिनताओं से और उपाधियों से ऊपर उठ कर अन्तरतम में प्रवेश करता है और हंस की तरह दूध और पानी को अलग-अलग करता है। इसके विपरीत जो बाह्य जगत में उसकी उपाधियों और आकर्षणों में ही डूबता-उतराता रहता है, वह महान् दिखाई देते हुए भी, किसी भी क्षण गिर पड़ सकता है। कौरवों और पाण्डवों में यही अन्तर था। इसीलिए कौरव भीष्म और विदुर के सदुपदेशों और श्रीकृष्ण के सत्यपरामर्शों से लाभ न उठा पाये और पाण्डवों ने हर महत्वपूर्ण प्रसंग पर श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर के निर्णयों का स्वागत किया और इनसे लाभ उठाया।

नानाभाई के इन चरित्र-चित्रणों की खूबी यही है कि प्रत्येक पात्र किसी-न-किसी अवस्था में आत्म-निरीक्षण करता है और पश्चात्ताप की मनःस्थिति में अपने कृत-कर्मों का विश्लेषण आप ही करता है।

एक और विशेषता है। वह यह कि जो घटनाएं अगम्य और रहस्यपूर्ण हैं, उन्हें बुद्धि-गम्य बनाने का प्रयत्न किया है।

—हरिभाऊ उपाध्याय

अनुक्रम

□

□

"महाभारतकार ने भौतिक
युद्ध की आवश्यकता नहीं,
उसकी निरर्थकता सिद्ध की
है। विजेता से रुदन
कराया है, पश्चात्ताप
कराया है और दुःख के सिवा और
कुछ नहीं रहने दिया।"

—मो. क. गांधी

धर्मराज युधिष्ठिर

१ / राजसूय-यज्ञ के बाद

राजसूय-यज्ञ पूरा हो गया । देश-देशान्तर के राजा-महा राजा अपने-अपने स्थानों को लौट गये। व्यास भगवान् और उनके शिष्य अपने आश्रम को गये, श्रीकृष्ण द्वारिका गये और दुर्योधन अपने भाइयों के साथ हस्तिनापुर चला गया ।

एक दिन युधिष्ठिर अपनी बैठक में कुछ उदास-से बैठे हुये थे कि इतने में वहां कुन्ती आ पहुंची ।

"बेटा, युधिष्ठिर !" कुन्ती ने कहा, "आज उदास क्यों बैठे हो ?"

युधिष्ठिर जरा ठीक से बैठकर बोले, "माँ, पता नहीं क्यों, आज कुछ अच्छा नहीं लग रहा है ।"

"इतना विशाल मानव-समाज एकत्र हुआ था, वह बिखर गया, इसलिए दो-एक दिन जरा उदास-सा लगेगा ।" कुन्ती ने कहा ।

"माँ," युधिष्ठिर बोले, "कोई चीज नहीं मिल जाती, तब तक मनुष्य उसको प्राप्त करने के लिए अथक परिश्रम करता है और इसी में आनन्द पाता है, किन्तु जब वह वस्तु मिल जाती है तो दूसरे ही क्षण वह आनन्द, पता नहीं, कहाँ चला जाता है और इसके बाद कौन-सी वस्तु आनन्द देगी, उसकी खोज और आशा में मनुष्य नया परिश्रम प्रारम्भ करता है ।"

"बेटा !" कुन्ती बोली, "तू तो सिंहासन पर बैठने के बाद भी सोच और चिन्ता में रह रहा है ! मैं तेरा यह सब तर्क-वितर्क कुछ नहीं समझती। मुझे तो इतना ही समझ में आता है कि हम लोग अंधेरी रात में लाख के महल से बच निकले थे और आज तक इधर-उधर भटकते रहे। अब आज जरा निश्चिन्त होकर बैठने का समय आया है, तो हृदय में कुछ शान्ति अनुभव होती है।"

"माँ!" युधिष्ठिर सिर हिलाते हुए बोले, "मनुष्य बड़ा ही विचित्र प्राणी है। एक चीज, चाहे जितनी ही मधुर क्यों न हो, लम्बे समय तक उसे आनन्द नहीं दे सकती। मनुष्य को विविधता पसन्द आती है। केवल सुख-ही-सुख हो, तो वह भी फीका लगता है। इसलिए परम कृपालु ईश्वर ने सुख के पहले और पीछे दुःख की योजना की है। माँ, मुझे तो ऐसा लगता है कि मनुष्य-जीवन का अधिकांश भाग दुःख से ही भरा हुआ है"

"ऐसा नहीं हो सकता।"

"ऐसा ही है। मनुष्य-जीवन का हिसाब निकाला जाय तो उसमें अधिकतर दुःख ही नजर आयगा।"

यदि ऐसा ही हो तो मनुष्य के जीवन का रस कैसे कायम रह सकता है?"

"माँ, ईश्वर ने जिस प्रकार मनुष्य के जीवन में दुःख का समावेश किया, उसी प्रकार अनेक दुःखों को भूल जाने की विचित्र शक्ति भी उसे दे दी है। इसी कारण मनुष्य जीवित रह सकता है। अपनी ही बात लो। पहली बार वन को गये, तब ऐसा ही मालूम होता रहता था कि इस बनवास का कभी

अन्त ही नहीं आयगा । नित्य-प्रति के नये-नये दुःख हमारे हृदय को छेद डालते थे। याद है न तुमको वह दिन, जब तुमको प्यास लगी थी ? उस दिन तुम कैसी बेहाल हो गई थीं और भीमसेन को एकदम रवाना किया था ? आज उस प्रसंग का दुःख कहाँ चला गया ? अब तो ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसे छोटे-मोटे दुःख कहीं थे ही नहीं।"

"वह दुःख तो अब चला गया, अतः उसको क्यों याद किया जाय ?"

"इसी प्रकार जब वन में भटकते थे तो ऐसा लगता था कि इस बन से राजमहल में पुनः कब लौटेंगे ? और आज जब सिर पर यह छोटा-सा मुकुट रक्खा हुआ है तो भी उसका भार मन-को परेशान कर रहा है, और मन में ऐसा होता है कि राज-सूय-यज्ञ की धूम-धाम से मुक्ति मिली है तो दो-चार दिन जंगलों फिर में क्यों न घूम आवें।"

"ऐसा मत कहो," कुन्ती बोल उठी, "जंगलों में खूब पेट भर कर घूम लिये हैं। अब तो स्थिर होकर राज्य करो, जिससे मुझे शान्ति मिले और तेरे भाई सुख की नींद सोयें।"

"माँ, एक बात बता," युधिष्ठिर ने कहा "क्या, पिता पाण्डु को भी गहरी नींद आई थी ? बिना चिन्ता की नींद तो जंगल में नीले आकाश के नीचे पत्थर पर सो रहने वाले गडरिये के भाग्य में ही लिखी होगी । मेरे जैसे अनेक छोटे-बड़े राजा तो मखमल की गद्दी पर अपनी पसलियाँ घिस-घिसकर मर जायेंगे, लेकिन उन्हे शान्ति की नींद नसीब न होगी। माँ, तुम्हारे मन को इस राजसूय-यज्ञ से शान्ति मिली है। मैं समझता हूं कि इस भारी धूम-धाम का यही एक बड़ी

फल मुझे प्राप्त हुआ है।"

"हाँ, मुझे तो आनन्द हुआ ही है। मेरे पुत्र के पैरों में बड़े-बड़े चक्रवर्ती राजा सिर झुकावें, मेरी पुत्र-वधू के सिर पर ब्राह्मण सात समुद्रों के जल का अभिषेक करें, मेरे आँगन में नित्य लाखों मनुष्यों को भोजन परोसा जाय, श्रीकृष्ण जैसे जगत्मान्य पुरुष मेरे घर भोजन करने वाले अतिथियों की पत्तलें उठाने में गौरव अनुभव करें, यह सब देखकर संसार में ऐसी कौन माता होगी, जो आनन्द-विभोर न हो जायगी ? पर बेटा, मुझे दुःख हुआ है तो एक ही बात से।"

"किस बात से ?" युधिष्ठिर ने पूछा।

"मेरे आँगन में यह अभूतपूर्व अवसर आया और उस समय तुमने शिशुपाल को मरवा डाला, यह मुझे जरा भी पसन्द नहीं आया।" कुन्ती ने अरुचि दिखाते हुए कहा।

"किन्तु माता !" युधिष्ठिर बोले, "दूसरा मार्ग ही न था। पितामह जैसे वृद्ध पुरुष ने उठकर कहा कि श्री कृष्ण ही सब प्रकार से श्रेष्ठ हैं, अतः उनकी ही पूजा सबसे पहले होनी चाहिए ; फिर भी शिशुपाल मानता नहीं था।"

"पितामह को और तुमको श्रीकृष्ण सर्व-श्रेष्ठ लगे हों, लेकिन शिशुपाल को न लगें तो क्या हुआ ?"

"लेकिन माँ, शिशुपाल तो किसी भी तरह यज्ञ में विघ्न डालना चाहता था। पूजा का तो एक बहाना उसके हाथ लग गया।" युधिष्ठिर ने स्पष्टीकरण किया।

"बेटा, क्या संसार में अनेक बार ऐसा नहीं हुआ है कि जो साक्षात् ईश्वर का अवतार होता है, उसको भी लोग उसके जीवन-काल में नहीं पहचान पाते ? और यह न पहचानने वाले

जो बोलते हैं, वह शुद्ध भाव से ही बोलते हैं।" कुन्ती ने कहा।

"माँ, तुम ठीक कहती हो।"

"पहले तो तुम भरी सभा में राजाओं का अभिप्राय जानना चाहते हो और फिर जब कोई मनुष्य अपना अभिप्राय प्रकट करता है और वह तुम्हारे अनुकूल नहीं पड़ता तो तुम उसका मुंह बन्द कर देना चाहते हो। जिस समाज में मनुष्य को अपनी इच्छानुसार विचार प्रकट करने की स्वतंत्रता न हो और उल्टे मनुष्य को अपने विचार प्रकट करने पर अपराधी समझा जाय, वह समाज मनुष्यों का नहीं, बल्कि गुलामों का समाज है, ऐसा भीष्म अनेक बार कहते रहे हैं।"

"मां, शिशुपाल केवल अपना अभिप्राय प्रकट करना चाहता होता, तो बात दूसरी थी; लेकिन उसकी तो यज्ञ में विघ्न डालने की पूरी योजना थी। अतः श्रीकृष्ण ने पूरा अवसर देने के बाद उसका सिर उड़ा दिया।" युधिष्ठिर बोले।

"हो सकता है।" कुन्ती ने कहा, "किन्तु हम स्त्रियों को तो ऐसे विषयों में बहुत सन्देह होता है। राजसूय जैसे यज्ञ में श्रीकृष्ण की बुआ और—दूर की ही सही—मेरी बहन के पुत्र का सिर कट जाय, तो मैं तो इसे अपशकुन ही समझती हूं।"

"इसमें क्या है?" युधिष्ठिर कहने लगे, "बड़े-बड़े मेलों, लग्नों-सत्रों और यज्ञों में ऐसी घटनाएं होती ही रहती हैं। इनमें अपशकुन क्या? ऐसे प्रसंगों पर तो मनुष्य को थोड़ा कठोर रहना चाहिए।"

"युधिष्ठिर! कठोर न रही तो जीवित भी नहीं रह पाती, यह तुम जानते हो। लेकिन तुम यह नहीं समझते कि दुनिया में अनेक बार ऐसी छोटी-छोटी बातें भी समय निकलने

पर ऐसा रूप धारण कर लेती हैं कि सबके लिए मुश्किल पड़ जाती है। जो हो, एक दूसरी बात की तुम्हें खबर है ?" कुन्ती ने पूछा।

"कौन-सी बात ?" युधिष्ठिर ने पूछा।

"दुर्योधन आया तो था, लेकिन वह भी खूब गुस्सा होकर गया है।" कुन्ती बोली।

"किसलिए ? उसने तो कुछ नहीं बताया।"

"यों तो वह धृतराष्ट्र का पुत्र है और शकुनि की बहन के पेट में रहा है। भीमसेन ने उसकी हंसी उड़ाई होगी, इसी का उसको बुरा लगा होगा।" कुन्ती ने कहा।

"ठीक, मुझे याद आया। उसने भूल से पानी में अपने कपड़े भिगो लिये थे। परन्तु इससे क्या हुआ ?"

"यही तो बहुत-कुछ है। हस्तिनापुर जाते समय वह मेरे पास मुंह फुलाता हुआ आया था और बहुत-कुछ कहता-सुनता रहा। भीम को मैं बहुत समझाती हूं, किन्तु दुर्योधन को जो देखता है, तो उसकी आंखें फटने लगती हैं। अब दुर्योधन घर जाकर बहुत-कुछ उल्टी-सीधी बातें कहे-सुनेगा।" कुन्ती बोली।

"यह तो उसका स्वभाव ही है। हमको धीरज रखना चाहिए।"

"किन्तु उसका यह स्वभाव क्या हमारे लिए बाधक नहीं होगा ? वह तुम्हारे काका के जैसा ही मन का बहुत मैला है। यदि कभी कोई बात उसे चुभ गई, तो सौ वर्ष तक याद रक्खेगा और समय आने पर दूना बदला लेगा। उसने अनोखी घड़ी में जन्म लिया है।"

"तो वह भी धृतराष्ट्र का बेटा और हमारा भाई है।

अच्छा हो या बुरा, उसे थोड़ा-बहुत सहन करना ही पड़ेगा।"

ये बातें हो रही थीं कि सहदेव जल्दी-जल्दी आया। उसे आता देखकर कुन्ती बोली, "क्यों सहदेव ? क्या बात है ?"

"माँ, विदुर काका आ रहे हैं।"

"विदुर ?" कुन्ती ने पूछा।

"हां-हां, देखो तो वह उनका रथ दिखाई दे रहा है।"

"तब तो बड़ी खुशी की बात है।" कुन्ती बोली, "मैं उनसे कहने ही वाली थी कि इस यज्ञ की धूम-धाम में मैं तुम्हारे पास दो घड़ी भी निश्चिन्त होकर न बैठ पाई, अतः दो दिन ठहर जाओ, किन्तु वह नहीं माने। अब वह आये हैं तो अच्छा ही हुआ युधिष्ठिर, अब इनको कुछ दिन ठहराना।"

"माँ, किसे मालूम कि हम क्या कल्पना कर रहे हैं और विदुर काका क्या सोचते आ रहे होंगे। उनसे मिलने के बाद ही मालूम होगा।" युधिष्ठिर ने उत्तर दिया। फिर तीनों व्यक्ति विदुर को को लिवाने आगे गये।

□

"काका, आप अभी तो यहां से गये। फिर इतनी जल्दी लौटने का क्या कारण हो गया ?" युधिष्ठिर ने पूछा।

"खास कारण तो यही है। महाराज धृतराष्ट्र ने हस्तिनापुर में एक विराट् सभा का आयोजन कराया है।" विदुर ने कहा।

"मय दानव ने हमारी सभा की थी, वैसी ?" युधिष्ठिर ने पूछा।

"नहीं-नहीं बिल्कुल छोटी-सी है। वहीं कौरवों ने चौपड़ खेलने के लिए तुम्हें बुलाया है।" विदुर ने कहा।

"चौपड़ खेलने के लिए ?" युधिष्ठिर ने जोर देकर पूछा।

"हां, चौपड़ खेलने के लिए। महाराज ने स्वयं ही मुझे आदेश दिया और कहा कि जाओ, पाण्डवों को बुला लाओ।"

"मुझे चौपड़ खेलने का शौक तो है, किन्तु कुछ बरसों से छोड़ दिया है। विदुर काका, इस खेल का चस्का जिस मनुष्य को लग जाता है, वह फिर बरबाद हो जाता है।" युधिष्ठिर ने कहा।

"अवश्य, मैंने तो महाराज से भी कह दिया था और तुमको भी कहे देता हूं कि जिन-जिन क्षत्रियों को इसका चस्का लगा है, उन सबका विनाश हुआ है।"

"काका, यदि खेल खेल के तरीके से खेला जाय तो उसके अनेक लाभ हैं। चौपड़ के खेल में सावधानी, होशियारी, अंगुलियों के स्नायुओं पर अधिकार डालने पर भी पुनः खेलने की सामर्थ्य आदि बहुत-सी बातें सीखी जा सकती हैं।" युधिष्ठिर बोले।

"यह सब बेकार लोगों के धन्धे हैं। आज सारे भारत के राजा लोग इस लत के शिकार हो रहे हैं। मैं इसमें बरबादी के सिवा और कुछ नहीं देख पाता।"

"आपका कहना सही हैं। तो मुझे बताइये कि मैं क्या करूं? आपके साथ चलूं या नहीं?" युधिष्ठिर ने सीधा प्रश्न किया।

"मैं आया हूं तुम सबको बुलाने के लिए। चलना न चलना तुम्हारी मरजी पर है।" विदुर ने साफ-साफ कह दिया।

"आपके जैसे व्यक्ति इतनी दूर बुलाने आयें और हम न चलें तो आपको कैसा लगेगा?"

"नहीं, मुझे तो जरा भी बुरा नहीं लगेगा। मैं तो तुम न

चलो, उसी में मेरी खुशी है।" विदुर ने कहा।

"आपको बुरा नहीं लगेगा तो धृतराष्ट्र काका को तो लगेगा ही।"

"लगे तो भले ही लगे। जुआ खेलना तुम्हें अधर्म प्रतीत हो तो तुम मत आओ। मैं धृतराष्ट्र को समझाकर कह दूंगा।" विदुर ने कहा।

"लेकिन यह कैसे उचित हो सकता है? खेलना न खेलना, यह तो अलग प्रश्न है, पर काका ने बुलाया है, तो जाना ही चाहिए।" युधिष्ठिर ने कहा।

"युधिष्ठिर! जाने के बाद खेले बिना नहीं रहा जायगा।" विदुर ने चेतावनी दी।

"नहीं कैसे रहा जायगा? किसकी हिम्मत है, जो मुझे जबर्दस्ती खेलने के लिए राजी कर सके?" युधिष्ठिर ने जोर देकर कहा।

"बेटा युधिष्ठिर, तुम्हारा कहना ठीक हो सकता है। पर जब खेलने वालों की मण्डली जुट जाती है और वे जब खेलने के लिए उकसाते हैं तब मन को रोकना कठिन हो जाता है। यह व्यसन ही ऐसा है।" विदुर ने खिन्न होकर कहा।

"काका, आप इतनी-सी बात पर खिन्न क्यों होते हैं? खेलना अगर पड़ भी गया तो मैं बाजी लगाकर नहीं खेलूंगा, बस।" युधिष्ठिर ने सहज भाव से कहा।

"बात इतनी सरल नहीं है, युधिष्ठिर! तुम पाण्डवों में सबसे बड़े हो, पर तुम्हें यह सूर्य जैसी स्पष्ट बात समझ में नहीं आती और तुम जुआ खेलने का आमन्त्रण किसी-न-किसी बहाने स्वीकार करने को तैयार हो रहे हो। इसका मुझे बड़ा

दुःख है।" विदुर ने शान्ति से कहा।

"काका, ऐसी बात नहीं है। आप जब देखोगे तो आपको विश्वास हो जायगा।"

"मैं तो विश्वास किये बैठा हूं। मुझे ये सब लक्षण शुभ नहीं दिखाई देते। सबके पीछे अकल्पित भविष्य नज़र आता है। जैसी दैव की इच्छा! तो फिर कल यहां से रवाना होने की तैयारी करो।"

"अच्छा, भाई सहदेव! हम सबको कल प्रातःकाल धृतराष्ट्र काका के यहां हस्तिनापुर चलना है। इसके लिए सारी तैयारी करो। मां और द्रौपदी को भी साथ चलना है। राजसूय-यज्ञ करने के बाद हमें काका को प्रणाम करने भी जाना चाहिए न!"

इस प्रकार कहकर युधिष्ठिर विदुर काका को भोजनगृह में लिवा ले गये।

२ / द्यूत-सभा में

"पधारिये, महाराज युधिष्ठिर!" द्यूत-सभा में बैठा हुआ शकुनि बोला, "क्षीर-सागर के फेन के समान सफेद हाथीदांत के ये पासे आपकी बाट जोह रहे हैं।"

"गान्धारराज, ये मेरी बाट नहीं जोहते। मैंने खेलना छोड़ दिया है। आप खेलिये, मैं देखूंगा।" युधिष्ठिर ने उत्तर दिया।

"आपको खेलने के लिए ही तो विशेष रूप से बुलाया गया है।" शकुनि बोला।

"यह तो ठीक है," युधिष्ठिर ने कहा, "लेकिन मैं तो

महाराज धृतराष्ट्र को प्रणाम करने आया हूं। और दूसरों को खेलते हुए देखना भी एक हद तक खेलने के बराबर ही होता है।"

दुर्योधन जरा आगे बढ़कर बोला, "युधिष्ठिर! हम सब भाइयों में चौपड़ का खेल अकेले तुम्हीं को आता है। इसका शौक भी तुम्हें है। तुम राजसूय-यज्ञ से शान्तिपूर्वक निपट गये, उसकी खुशी में महाराज धृतराष्ट्र की सम्मति से इस समारोह की योजना की गई है। तुमने यज्ञ करके समस्त कौरव-कुल को उज्ज्वल किया, उसकी यत्किंचित् स्मृति में तुम्हें यहां बुलाकर दो दिन आनन्द मनाने का विचार किया गया है। ऐसे अवसर पर यदि तुम स्वयं ही खेलने से इन्कार करोगे तो सारा उत्सव फीका पड़ जायगा और हमारी सारी मेहनत बेकार जायगी।"

"भाई दुर्योधन!" दुर्योधन के कन्धे पर हाथ रखते हुए युधिष्ठिर बोले, पासों का खेल बड़ा बुरा खेल है, यह क्या तुम नहीं जानते?"

"क्या कहा, खेल बुरी चीज है?" युधिष्ठिर का हाथ अपने कन्धे पर से हटाते हुए दुर्योधन बोल उठा, "खेल बुरी चीज हो ही नहीं सकती। विदुर काका भी महाराज धृतराष्ट्र को इसी तरह उल्टा-सीधा समझाते थे, उसी समय मैंने कहा था कि ऐसा खेल अगर क्षत्रिय नहीं खेलेंगे तो कौन खेलेगा?"

शकुनि की ओर इशारा करते हुए युधिष्ठिर ने कहा। "ये सब खेलने वाले बैठे तो हैं। गान्धारराज तो उनमें सबसे अधिक कुशल हैं।"

"युधिष्ठिर!" दुर्योधन बोला, "तुम्हें खेल का शौक तो है ही। और हमें तो मित्र भाव से खेलना और उसका आनन्द लूटना है।

"अगर यह बात है तो ठीक है, मैं खेलूंगा। किन्तु खेल खेलेंगे जुआ नहीं।" युधिष्ठिर ने कहा।

"इसका क्या मतलब ?" शकुनि ने आंखें चढ़ाकर कहा, "खेल खेलोगे और जुआ नहीं ? तुम कहना क्या चाहते हो ?"

"पासे का खेल खेलना है, लेकिन दांव नहीं लगाया जायगा। हार-जीत जैसी कोई चीज नहीं होगी। युधिष्ठिर ने स्पष्ट किया।

दुर्योधन भौंहें चढ़ाकर बोला, "मामा, समेट लो चादर, और फेंक दो इन पासों को इतनी दूर कि उन पर किसी की नजर भी न पड़े। इन्द्रप्रस्थ बुलाकर भीम के हाथों मेरा अपमान कराया और हमारे घर आकर खुद अब मेरा अपमान कर रहे हैं। धर्मराज! पधारिये आप अपने स्थान को। मुझे भी अब नहीं खेलना। मुझे आज पता चला कि आप अपने को धर्मराज बनाकर दूसरों का अपमान किस तरह करते हैं!"

युधिष्ठिर ने कहा, "भाई दुर्योधन, इतने नाराज क्यों होते हो ? खेलेंगे तो अवश्य ही, किन्तु दांव नहीं लगाया जायगा, बस इतनी सी तो बात है।"

"दांव नहीं लगाया जाय तो खेल में रस ही क्या आएगा। खेल में तो स्वाद ही होड़ का होता है," दुर्योधन बोला, "दांव लगाने पर ही तो खेल में रस आता है।"

युधिष्ठिर ने कहा। "खेल के लिए खेल ही उचित है। दांव लगाकर खेलना तो धूर्तता है। जुए में एक बार उतर पड़ने के बाद फिर कोई ठिकाना ही नहीं रहता।"

"युधिष्ठिर, इसमें क्या इन्द्रप्रस्थ का राज लुट जायगा।

कैसी बच्चों की-सी बातें करते हैं आप !" दुर्योधन ने कहा, "खेलना है तो दांव लगाना ही चाहिए।"

"अच्छा, तो जैसी अपकी मरजी।" युधिष्ठिर ढीले पड़े।

"मामा ! उठो," दुर्योधन बोल उठा, "मेरी ओर से मेरे शकुनि मामा खेलेंगे और मैं दांव लगाऊंगा।"

"शकुनि !" युधिष्ठिर ने गम्भीरता से कहा, "हमें खेलना है, लेकिन धर्म के साथ। तुम पासा फेंकने में बहुत कुशल हो। और मैंने कितने ही समय से पासों को छुआ भी नहीं है। अतः तुम चालाकी मत करना।"

"महाराज ! यज्ञ से निपट कर तुम्हारा मन इतना अधिक शंकाशील कैसे हो गया है ? खेल का शौकीन पूरे उल्लास से खेल में प्रवृत्त होता है, उसके बदले में तुम इधर-उधर देखते हो और डरते रहते हो कि कहीं इस तरफ से बाघ न निकल पड़े अथवा उस तरफ से भेड़िया न आ कूदे। कभी कहते हो, 'नहीं खेलूंगा, कभी कहते हो, 'दांव नहीं लगाऊंगा' और कभी कुछ। यह सब क्या है ? युधिष्ठिर, एक बात बोलो और खेलना हो तो मैदान में आ जाओ।" शकुनि जरा गरम होकर कहने लगा।

"ठीक है, तो शुरू करो।" युधिष्ठिर ने कहा। पासों का शब्द कान में पड़ते ही उनके शरीर में बिजली का संचार होने लगा।

□

सारी सभा भरी हुई थी। भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा आदि अपने-अपने सिंहासनों पर बैठे हुए थे। कर्ण, दुःशासन, विकर्ण और अन्य कौरव अपने-अपने स्थानों पर जमे हुए थे। सभा के बीच में शकुनि और दुर्योधन बैठे हुए

थे। उनके सामने की ओर महाराज युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन नकुल और सहदेव बैठे थे।

खेल शुरू हुआ। शकुनि ने दुर्योधन की ओर से खेलना शुरू किया और एक के बाद एक दांव जीतने लगा। भव्य सभा-मण्डप, समाज और राजकुल में प्रतिष्ठित भीष्म-द्रोण जैसे दर्शक चारों ओर फैली हुई धूप-इत्र की महक, चन्द्रकिरणों के जाल़ के समान बिछी हुई सफेद चादर, ऐरावत के दांतों से बने हुए पासे, 'शाबाश', 'शाबाश', 'महाराज मजबूत रहिएगा', 'शकुनि पौ बारह !' आदि शब्द; इन सबने मिलकर जुए के खेल-जैसी पामर वस्तु को झूठा महत्व दे दिया और युधिष्ठिर जैसे महापुरुष की आँख में भी धूल डाल दी। युधिष्ठिर—धर्म का सूक्ष्म विवेक जानने वाले युधिष्ठिर—मन का सन्तुलन कभी का खो बैठे थे। जैसे-जैसे खेल आगे बढ़ता गया, वैसे-वैसे अधिकाधिक धृष्ट और पामर बनते गये। क्षय-रोगी जैसे-जैसे मृत्यु के निकट पहुंचता जाता है वैसे-वैसे वह मानने लगता है कि वह स्वस्थ होता जा रहा है। उसी प्रकार युधिष्ठिर जैसे-जैसे हारते गये वैसे-वैसे मानने लगे कि इस क्षण तक खोया हुआ सब-कुछ अगले दाँव में जीत लेंगे। भंवर में फंसा हुआ आदमी जैसे-जैसे बाहर निकलने के लिए जोर लगाता है, वैसे-वैसे अधिकाधिक फंसता जाता है, उसी प्रकार युधिष्ठिर अधिकाधिक फंसने लगे।

युधिष्ठिर हीरे-मोती हारे, धन-धान्य हारे, दास-दासी हारे, राज्य हारे और भाई भी हार गये। अन्त में स्वयं अपने-आपको भी वह दांव पर रख कर हार गये और कौरवों के दास बने।

"महाराज युधिष्ठिर ! अब और खेलना है !" शकुनि ने

आमन्त्रण दिया।

"हां, क्यों नहीं, पर मेरे इस दाँव में तुम जरूर हारोगे।" युधिष्ठिर ने कहा।

"किन्तु तुम दांव पर अब लगाओगे क्या ?" शकुनि बोला।

युधिष्ठिर के मस्तिष्क के कपाट खुल गये। "दाँव पर क्या लगाऊं ? मैं स्वयं अपने आप तक को हार चुका हूं, अब मेरे पास कुछ भी नहीं रहा।" धर्मराज दीन बन गये।

"महाराज ? शकुनि ने कहा "अभी द्रौपदी बाकी है। उसे दांव पर लगा कर आप गया हुआ सब-कुछ वापस भी पा सकते हैं।"

युधिष्ठिर एक क्षण रुक गये। इसके बाद उन्हें फिर नशे का चक्कर आया और वह बोले—"द्रौपदी बाकी है ?" और फिर थोड़ा ठहर कर मण्डप के विशाल चंदोवे की ओर बढ़ने लगे।

"महाराज ! क्या द्रौपदी को दांव पर लगाना है ?" शकुनि ने पूछा।

युधिष्ठिर ने अपना सारा बल एकत्र करके कहा—"पाञ्चाल राजा की पुत्री, कुन्ती की पुत्र-वधू, श्रीकृष्ण की बहन, हमारे कुटुम्ब की लक्ष्मी, जिसके केशों के अवभृथ स्नान का जल अभी पूरी तरह नहीं सूखा है, उस द्रौपदी को मैं दांव पर रखता हूं।

युधिष्ठिर के वाक्य पूरा करते ही शकुनि ने तुरन्त पासा फेंका और बोला—"महाराज ! मैं जीत गया हूं।"

जिस प्रकार अफीमची की पीनक उतर जाती है और उसका नशा टूटने लगता है, उसी प्रकार युधिष्ठिर का सारा जोश ठण्डा पड़ गया और शरीर के बन्धन ढीले पड़ गये। उनका

सारा शरीर पसीने से भीग गया। सिर चकराने लगा। दिल बैठने लगा और सारा शरीर निष्चेष्ट-सा हो गया। युधिष्ठिर भीम और अर्जुन के पास जाकर लुढ़क पड़े।

□

दुष्ट दु:शासन द्रौपदी को भारी सभा में खींच लाया। उस समय वह रजस्वला थी और एक ही वस्त्र पहने हुए थी। द्रौपदी स्तम्भित, आतंकित लेकिन क्रोधपूर्ण गम्भीर वाणी में बोली—

"कौरव-कुल के वृद्ध पुरुषों और राजपुरुषों! यह दुष्ट मुझे यहां तक घसीट लाया है और मेरा अपमान कर रहा है। पर मैं आपसे एक प्रश्न पूछना चाहती हूं। कृपया उत्तर दीजिए कि खेल में महाराज युधिष्ठिर पहले अपने को हारे हैं और उसके बाद मुझे दांव पर रखा है अथवा मुझे हारे हैं, फिर अपने को दाँव पर रखा है। इस बात का निर्णय आप लोगों से मांगती हूं। मैं महाराज पाण्डु की कुल-वधू हूं, द्रुपद की पुत्री हूं, शूरवीर पाण्डवों की भार्या हूं। मेरा यह अपमान आपके सामने हो रहा है और आप चुप हैं।"

सभा स्तब्ध हो गई। कौन बोले? दुर्योधन का अधर्म प्रकट करने की हिम्मत कौन करे? अन्त में भीष्म खड़े हुए।

"बेटी द्रौपदी! तुम्हारा प्रश्न विकट है। युधिष्ठिर पहले खुद हारे और दास बने। दास की स्वतन्त्र-सम्पत्ति नहीं होती। अतः बाद में वह तुम्हें दांव पर नहीं रख सकते, यह एक बात है परन्तु युधिष्ठिर स्वयं धर्म को जानने वाले हैं। युधिष्ठिर खुद दास हो गये, अतः उनकी तमाम सम्पत्ति उनके स्वामी की गिनी जायगी। इस प्रकार तुमको दाँव पर न रखा जाय तो भी जीती हुई वस्तुओं में ही तुम्हारी भी गिनती होगी। यह अति

सूक्ष्म विषय है। धर्म की गति कौन जान सकता है ?"

भीष्म का उत्तर स्पष्ट न था। चाण्डाल-चौकड़ी का निर्णय तो स्पष्ट ही था कि द्रौपदी उनकी दासी समझी जानी चाहिए। फिर भी द्रौपदी के प्रश्न से सभा में खलबली मच गयी। यह देख दुर्योधन उच्च स्वर से बोला—"द्रौपदी का प्रश्न वास्तव में तो उठता ही नहीं, किन्तु इस प्रश्न का जो निर्णय युधिष्ठिर करें, वह मुझे स्वीकार है। युधिष्ठिर यदि खुद कह दें कि द्रौपदी जीती न समझी जाय तो द्रौपदी अभी स्वतन्त्र हो जायगी।"

सभी सुनने वालों को दुर्योधन के ये शब्द पसन्द आये। सभी को इन शब्दों में दुर्योधन की तटस्थता और धर्म-बुद्धि प्रतीत हुई। अतः सबकी आंखें युधिष्ठिर की ओर मुड़ गईं। किन्तु युधिष्ठिर की आंखें तो धरती में गड़ी थीं। वे अपने को खो चुके थे। क्या उत्तर दें, यह वे खुद नहीं समझ रहे थे।

आखिर दुर्योधन का छोटा भाई विकर्ण उठा, "गुरुजनों एवं सभासदों, भीष्म और कृपाचार्य जैसे धर्म का निर्णय करने-वाले मौजूद हों, वहाँ मेरे जैसे व्यक्ति का खड़ा होना धृष्टता ही समझी जायगी, किन्तु ऐसे जिम्मेदार पुरुष जब ऐसे विकट प्रसंग पर अपना मुंह बन्द कर लें, तो राज्य का अकल्याण होता है और समाज का भी अधःपतन होता है। ऐसे धर्म-संकट के प्रसंग पर अपने विचार स्वतंत्रतापूर्वक प्रकट करना प्रत्येक व्यक्ति का धर्म है और प्रत्येक इस धर्म का पालन करे, इसी में समाज और राज्य का कल्याण है।

"द्रौपदी का प्रश्न उचित है, किन्तु मैं तो इससे भी आगे जाता हूं। द्रौपदी को पहले दांव पर रक्खा हो या बाद में, किंतु युधिष्ठिर को इन्हें दांव पर रखने का अधिकार ही कहां था ?

द्रौपदी पाण्डवों की अर्धांगिनी है, उनके जीवन की भागीदार है, उनके सुख-दुःख की स्वतन्त्र हिस्सेदार है, वह क्या अकेले युधिष्ठिर की मिल्कियत है। मेरे मतानुसार तो अपनी स्त्री को इस प्रकार अपनी सम्पत्ति समझने वाले महाराज युधिष्ठिर ही समाज की अदालत के सामने अपराधी ठहरते हैं। सभासदो, जिस प्रकार युधिष्ठिर स्वतन्त्र व्यक्ति हैं, जिस प्रकार भीम और अर्जुन आदि स्वतंत्र व्यक्ति हैं, उसी प्रकार द्रौपदी भी स्वतन्त्र व्यक्तित्व रखती है। भीम, अर्जुन अथवा द्रौपदी किसी को भी दांव पर रखने का युधिष्ठिर को कोई अधिकार नहीं है। यदि युधिष्ठिर ने उन्हें दाँव पर रखा हो तो उसके लिए वह समाज के सामने अपराधी हैं।

"महाराज, युधिष्ठिर पहले खुद अपने को दांव पर रखकर दास हो गए, अतः पीछे से उन्हें द्रौपदी को दाँव पर रखने का अधिकार हो ही नहीं सकता। अरे, उन्हें तो द्रौपदी की याद भी नहीं रही थी, किन्तु दुष्ट शकुनि ने उन्हें याद दिलाई और युधिष्ठिर का मन विह्वल हो गया, अतः उन्होंने बिना किसी प्रकार का विचार किये द्रौपदी को दाँव पर रख दिया। युधिष्ठिर जैसे जुआरी लोग जुए में यदि ऐसा कर बैठे तो उसे धर्म की छाप लगाकर पकड़े रहना धर्म का खून करने के समान होगा।

"मेरे बड़े भाई दुर्योधन इस बात का निर्णय युधिष्ठिर पर छोड़ते हैं, यह भी उचित नहीं है। इस विषय में उनका विचार कपट-पूर्ण है। युधिष्ठिर स्वयं सौजन्य के भण्डार हैं। इनके जैसे सज्जन पुरुष से ऐसा निर्णय माँगा जाय तो वह अपने और अपने लोगों पर थोड़ा कष्ट डाल करके भी शत्रु को सन्तोष देने का प्रयत्न करेंगे और ऐसा करने में ही उनका सौजन्य

अधिक प्रकाशित हो उठता है। तुम युधिष्ठिर के इस सौजन्य का अनुचित लाभ उठाना चाहते हो।

"किन्तु बड़े भैया, ध्यान रखें; आप महाराज युधिष्ठिर को धोखा देकर भले ही लाभ उठा लें, किन्तु ईश्वरीय सत्ता को कोई धोखा नहीं दे सकता।

"मामा शकुनि ने युधिष्ठिर को कपट से जीता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। मुझे तो आश्चर्य यही है कि पितामह आदि इस अधर्म को देखते हुए भी क्यों नहीं स्पष्ट रूप से बोल रहे हैं! जो मनुष्य ऐसे प्रसंग पर भी अपने विचार निर्भयता-पूर्वक प्रकट नहीं करता, उसे क्या समझना चाहिए, यह धर्मशास्त्र का एक बड़ा प्रश्न है।

"भैया! सब खुशामदी लोग आपको आसमान पर चढ़ा रहे हैं। जिन राजकुमारों के आसपास ऐसे खुशामदी लोग शुरू से ही रखे जाते हैं, वे अपनी बड़ी उम्र में अन्य लोगों के कड़वे किन्तु सच्चे वचन किस प्रकार सुन सकते हैं? भाई! मैं आज कड़वा लगूंगा, किन्तु इस जुए के फल-स्वरूप किसी समय ईर्ष्या द्वेष का जो तूफान भड़क उठेगा; उस समय मेरी बातें याद की जायंगी। सभासदो! मुझे जैसा सत्य प्रतीत हुआ वैसा स्पष्ट भाषा में कह डाला। आप लोग भी इस विषय में अपने स्वतंत्र विचार प्रकट करेंगे तो कुछ आशा की जा सकती है कि द्रौपदी को न्याय मिले। किन्तु यदि आप लोग यह मानकर हठ करते रहेंगे कि बड़े भाई जो कुछ करते हैं, वह सब ठीक ही करते हैं, तो मैं इसमें सबका विनाश ही देख रहा हूं। यह उचित न होगा।"

विकर्ण का एक-एक शब्द युधिष्ठिर के घावों पर अमृत छिड़क रहा था। किन्तु उसने अपना कथन समाप्त किया भी न

था कि सभा में 'नादान छोकरा !' 'धर्म की पूंछ !' 'पाण्डवों का गुलाम !' आदि शब्दों की बौछारें उस पर होने लगीं। ऐसे में सभा में जो कुछ हो रहा था, उसके विरुद्ध अपना पुण्य-प्रकोप प्रकट करने के लिए विकर्ण सभा को छोड़ कर चला गया।

३/ युधिष्ठिर का दृष्टि–बिन्दु

"महाराज," द्वैतवन में एक वृक्ष की छाया में बैठे-बैठे अर्जुन बोला, "कुछ दिनों से आपसे एक प्रश्न पूछने की इच्छा हो रही है।"

"पूछो भाई !" पास ही वन-मृग के सिर को खुजलाते हुए युधिष्ठिर बोले।

"हम पहली बार चौपड़ खेलने में हारे और सब कुछ खोकर दास बन गये, यह तो समझ में नहीं आता है।" अर्जुन बोला।

"हम क्यों कहते हो ? मैं ही हारा हूं। मैं जुए के शौक में गाफिल हुआ और तुम सबको हार बैठा ! मैं तो भान ही भूल गया था।" युधिष्ठिर ने बीच में ही बात काटते हुए कहा।

"आप पहली बार भान भूले, यह तो मैं समझ गया। किन्तु पहली बार की हार और गुलामी से छूटने के बाद आपने दूसरी बार चौपड़ क्यों खेला होगा ?" अर्जुन ने पूछा।

"अर्जुन ! पहली बार का खेल मेरी मूर्खता का परिणाम था, किन्तु दूसरी बार का खेल तो मेरे लिए धर्म था।" युधिष्ठिर बोले।

"जुआ खेलना, और धर्म !" अर्जुन ने आश्चर्य से पूछा।

"हाँ !" युधिष्ठिर बोले—"सुनो, पहली बार जब हम हारे और दास हुए, तो द्रौपदी के शब्दों से प्रभावित होकर धृतराष्ट्र ने दो वरदान दिए थे।"

"हाँ दिये तो थे।" अर्जुन ने कहा।

"किन्तु यही अच्छा नहीं हुआ।" युधिष्ठिर बोले।

"क्यों ?" अर्जुन ने चकित होकर पूछा।

"मैं दुर्योधन के साथ खेला और हम सब उसके दास बने। दूसरी ओर धृतराष्ट्र ने कौरवों की इच्छा के विरुद्ध जाकर द्रौपदी को वरदान दिया और हम दास से फिर स्वतन्त्र हुए। यह स्वतंत्रता धर्मानुकूल न थी। इसके पीछे हमारा पुरुषार्थ न था, बल्कि धृतराष्ट्र की स्वार्थमय दया थी और हमारा मान-भंग था।" युधिष्ठिर अर्जुन को समझाने लगे।

"ठीक है, तो फिर ऐसा मान-भंग स्वीकार नहीं करना चाहिए था।" अर्जुन ने कहा।

"ठीक कहते हो। किन्तु उस क्षण तो मैं मूढ़ हो गया था, इसलिए मुझे यह बात नहीं सूझी।" युधिष्ठिर बोले—"बाद में जब हम इन्द्रप्रस्थ के लिए रवाना होने लगे, तब मेरी समझ में यह बात आई और मन में लगा कि दुर्योधन के पास लौट जाऊं और द्यूत की पराजय का फल मांग लूं। किन्तु इतने में ही दुर्योधन का आदमी दौड़ता हुआ आया और मैंने दूसरी बार खेलने का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया।" युधिष्ठिर ने कहा।

"यह आदमी न आया होता तो क्या आप खुद वापस लौट कर जाते ?" अर्जुन ने पूछा।

"मुझे लगता है कि मैं अवश्य जाता। दूसरी बार खेलने के लिए जाने में जुए का शौक न था, किन्तु पहले के पाप का

प्रायश्चित्त करने की वृत्ति थी। दूसरी बार खेलते समय मन में जरा भी आवेश न था और जब हार गया, तो मेरे मन में पूरा-पूरा सन्तोष था।" युधिष्ठिर ने कहा।

"भाई साहब, आप कहते हैं तो मैं आपकी दृष्टि को समझने का प्रयत्न करता हूं। लेकिन जब दुःख अपने आप दूर होता हो उस समय आगे होकर उसे निमन्त्रण देना मुझे तो पसन्द नहीं आता। वैसा करना सूझता भी नहीं।" अर्जुन बोला।

"अर्जुन?" युधिष्ठिर ने अर्जुन का कन्धा थपथपाते हुए कहा, "स्व-मान की रक्षा तो दुःख को आमन्त्रण देकर भी करनी चाहिए। मैं समझता हूं कि स्व-मान गंवाकर तीनों लोकों का राज्य भी मिलता हो, तो अर्जुन उसको लात मार देगा।" युधिष्ठिर बोले।

□

"भीमसेन!" युधिष्ठिर बोले—"यह तो तेरी समझ की भूल है।"

"इसमें भूल कहां से आ गई? आपने बारह संवत्सर वन-वास-सेवन की प्रतिज्ञा की है। संवत्सर का अर्थ वर्ष भी होता है और दिन भी होता है। हम दो अर्थ वाले इस शब्द का अपने अनुकूल अर्थ क्यों न करें? हमें वन में आये बारह दिन हो गये, अतः हमारा वनवास पूरा हो गया। अब तो मैं सीधा हस्तिनापुर जाऊंगा और दुर्योधन को मारकर आप को गद्दी पर बिठाऊंगा।" भीम अपनी योजना बताने लगा।

"इसे ही मैं तेरी समझ की भूल कहता हूं।" युधिष्ठिर शान्ति से बोले, "बारह संवत्सर की प्रतिज्ञा करते समय मेरे मन में बारह वर्ष ही का विचार था। अब शब्द-कोष में दिये

अर्थ का खिलवाड़ करके वनवास पूरा कर लेना न केवल दुर्योधन को, बल्कि अपनी आत्मा को भी धोखा देने के समान होगा। भीमसेन! मनुष्य अपने अन्दर रहने वाली छोटी-सी आत्मा को, धोखा देकर चौदह भुवनों का राज्य प्राप्त करले तो उससे क्या लाभ होगा?"

"महाराज, आपकी बात तो ठीक है, किन्तु यह रीति आपकी है, हमारी नहीं। मैं तो यह विचार करता हूं कि मुझे अपनी रीति से काम करना चाहिए? आपकी धर्म-अधर्म की तराजू की डण्डी इतनी पतली है कि वह मेरे मोटे हाथों से खिसक जाती है। मेरी तो तराजू भी मोटी और डण्डी भी मोटी। आपके बाट सिर के बाल भी तोल सकते हैं, किन्तु मेरे बाट पांच-दस सेर का अन्तर तो बताते ही नहीं।" भीमसेन ने दो-टूक जवाब दिया।

□

"युधिष्ठिर महाराज? आपने भीमसेन और अर्जुन को तो समझा दिया, लेकिन मेरे मन का समाधान अभी नहीं हुआ।" द्रौपदी बोली।

"तो मुझे अब तुम्हें समझाना रहा।" युधिष्ठिर ने कहा।

"दुर्योधन खास तौर से हमको हैरान करने के लिए द्वैतवन में आया था। आप यह जानते थे, फिर भी अर्जुन को भेज कर दुर्योधन को गन्धर्वों के बन्धन से आपने क्यों छुड़वाया?" द्रौपदी क्रोधपूर्वक बोली।

"न छुड़वाता तो क्या करता?" युधिष्ठिर ने कहा।

"गन्धर्व उसे मार डालते, और हमारी राह का काँटा खतम हो जाता।" द्रौपदी ने दांत पीसते हुए कहा।

"पाण्डु महाराज के पुत्र अरण्य में बैठे हों और धृतराष्ट्र के पुत्र को गन्धर्व मार डालें, इसमें हमारी कौन-सी शोभा है ?" युधिष्ठिर ने कहा।

"हां, शोभा है।" द्रौपदी ने रोषपूर्वक उत्तर दिया, "कुरु-वंश में जब भीष्म और धृतराष्ट्र जैसे वृद्ध पुरुष बैठे हों और हमारे कपड़े उतारे जाकर हमें वल्कल पहनाये जायं और भरी दुपहरी में हमें निकाल दिया जाय, क्या यह शोभा की बात है ?"

"देवी, क्रोध मत करो। कोई बुरा काम करे तो हमको भी वैसा करना क्या शोभा देगा? इस बन में चलते-चलते कभी यदि एकाध पुष्प अपने पैर के नीचे कुचल जाय तो क्या वह हमको काटने दौड़ेगा या वहीं पड़ा-पड़ा अपनी मीठी सुवास फैलाकर हमें आशीर्वाद देगा ? इसी कारण फूलों को देवता अपने सिर पर धारण करते हैं।" युधिष्ठिर बोले।

"दुर्योधन को छुड़ाया और उसे खिला-पिलाकर घर भेजा, तो ठीक; किन्तु उस दुष्ट जयद्रथ को किसलिए छुड़ाया ?" द्रौपदी ने प्रश्न किया।

"इसका भी वही कारण है।" युधिष्ठिर बोले।

"दुर्योधन तो काका पुत्र, हस्तिनापुर का युवराज था, किंतु जयद्रथ के साथ हमारा कौन-सा रिश्ता था ?" द्रौपदी बोली।

"जयद्रथ हमारी बहन का पति है।" युधिष्ठिर बोले।

"बहन ? कौन सी ?"

"क्यों ? दुःशला हमारी बहन नहीं है क्या?" युधिष्ठिर ने प्रश्नात्मक मुद्रा में कहा।

"अब देखना। इसे जीता जाने दिया; वह मन में वैर रखकर लौटेगा और मौका मिला तो आपमें से किसी को बाकी नहीं छोड़ेगा।" द्रौपदी बोली।

"तब का तब देखा जाएगा। मुझे लगता है कि आज की दी हुई क्षमा उसके दिल में जरूर स्थान पाएगी।" युधिष्ठिर ने जोर देकर कहा।

"पा ली जगह?" द्रौपदी हाथ जोड़ते हुए तिलमिलाई, "ऐसे दुष्ट सर्पों को दूध पिलाओ तो उसका भी जहर ही हो जाता है। इन्हें एकबारगी ही खत्म कर डाला जाय तो, दुनिया में दूसरों को काटें तो नहीं। ठीक है, मैं भी देखती हूं, आपकी क्षमा कहां तक चलती है।"

"पांचाली! यह क्षमा टिके या न टिके, तुम तीनों आदमी जोर करोगे तो शायद यह न भी टिके; किन्तु सच मानो, इस क्षमा के बल पर ही आज दुर्योधन के सिंहासन को मैं लुप्त होता हुआ देख रहा हूं। तुम सबको तुम्हारे गाण्डीव और गदा में श्रद्धा है।" युधिष्ठिर गम्भीरतापूर्वक कहने लगे, "लेकिन मुझे अपनी क्षमा में अधिक श्रद्धा है।"

"इस क्षमा का कौरवों के दिल पर कुछ असर पड़ेगा, इसका स्वप्न में भी ख्याल मत कीजिएगा।" द्रौपदी बोली।

"यह क्षमा," युधिष्ठिर बोले—"मेरी अपनी त्रुटियों के कारण, सम्भव है, कौरवों के मन को न पिघला सके; किन्तु इतना तो निश्चित ही समझो कि संसार में यह ऐसा बल उत्पन्न कर सकती है, जिसके फल-स्वरूप तुम्हारे शस्त्रास्त्रों की मार से भी ज्यादा कौरवों का नाश सम्भव हो सकता है।

"तुम्हें इसके बल का ज्ञान नहीं है। मेरी यह क्षमा आज

तो दीमक की भांति कौरव-वंश को नीचे से खोखला कर रही है। समय आने पर तुम्हें केवल एक ही चोट लगानी रह जायगी चाहे वह चोट अर्जुन के गाण्डीव की हो या भीम की गदा की।" युधिष्ठिर ने अपना हृदय उंड़ेलते हुए कहा।

"किन्तु महाराज।..."

द्रौपदी आगे बोलने ही वाली थी कि युधिष्ठिर ने बात काटी "किन्तु परन्तु कुछ मत बोलो; मुझे आशा है कि अभी भी दुर्योधन को सद्बुद्धि उपजेगी। मुझे कुरुकुल के पूर्वजों के तप में श्रद्धा है। मैं मानता हूं कि अभी यह तप समाप्त नहीं हुआ है।"

४ / श्रीकृष्ण की दृष्टि में

जब तेरहवाँ वर्ष समाप्त हुआ तब पाण्डव विराट्-नगर में थे। विराट् राजा ने अपने पुत्री उत्तरा का विवाह अभिमन्यु के साथ धूम-धाम से किया। इस अवसर पर पांचाल-राज द्रुपद, धृष्टद्युम्न, श्रीकृष्ण आदि भी उपस्थित थे। लम्बे वियोग के बाद सब एक-दूसरे से मिले थे, अतः सर्वत्र आनन्द फैला हुआ था।

पाण्डवों के सामने सबसे बड़ा प्रश्न यह था कि अब क्या किया जाय ? अपना राज्य दुर्योधन के पास से किस प्रकार प्राप्त किया जाय। यह तय हुआ कि पाण्डवों की ओर से श्रीकृष्ण दुर्योधन के पास सन्धि-चर्चा के लिए जाय। पर चर्चा विधिवत् शुरू करने से पहले श्रीकृष्ण पाण्डवों के विचार अलग-अलग जानने लगे।

"श्री कृष्ण !" बाहर मैदान में टहलते हुए अर्जुन ने कहा— "मुझे तो नहीं लगता कि भाईसाहब मान जायंगे।"

"तो फिर ?" श्रीकृष्ण ने पूछा।

"युधिष्ठिर ने इन बारह वर्षों में क्षमा और शांति की बातें की हैं। समस्त वनवास-काल में उनका मुख्य काम हिरनों को घास खिलाना, ऋषि-मुनियों के साथ धर्म और दया की बातें करना और जयद्रथ जैसे पकड़े गये लोगों को छुड़ाना रहा है। भीम तो समझने लगा था कि कहीं भाईसाहब साधु-मुनि न हो जायं।" अर्जुन बोला।

"क्या महाराज अब शांति की बातें करते हैं ?" श्रीकृष्ण ने पूछा :

"इस एक वर्ष में हम एक-दूसरे से मिल ही नहीं पाये हैं और मिलने के बाद हम और चीजों में फंस गये। इसलिए उनसे बात ही नहीं कर सके। किन्तु आज रात को जब हम मिलेंगे तो, इसमें संदेह नहीं, महाराज वही बात कहेंगे।" अर्जुन ने उत्तर दिया।

" 'वही बात' का मतलब क्या ?" श्रीकृष्ण ने पूछा।

"यही कि दुर्योधन अपनी इच्छा से राज्य दे दे तो ठीक है और यदि न दे तो हम सबको वन में जाकर त्यागियों का जीवन बिताने को तैयार हो जाना चाहिए।" अर्जुन के स्वर में निराशा थी।

"सखा अर्जुन !" श्रीकृष्ण ने कहा, "यह तेरी भूल है। यदि भीम और द्रौपदी भी ऐसा ही समझते हों तो वे भी भूल करते हैं। तुम युधिष्ठिर के मन को जितना जानते हो, उससे अधिक मैं पहचानता हूं। आज तक कितनी ही बार उनके अन्तर

में डुबकी लगाकर मैंने देख लिया है।"

"तो क्या आप यह कहना चाहते हैं कि महाराज दया, शांति क्षमा की बातें छोड़ देंगे ? क्या आपको ऐसा लगता है कि धर्म का नाम न लेकर वह सीधी लड़ाई की बातें करेंगे ?" अर्जुन ने पूछा।

"अर्जुन उतावली से काम मत लो।" श्रीकृष्ण ने कहा, "धर्म तो उनकी नस-नस में बस गया है। वह स्वयं धर्म के पुत्र हैं। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि उन्हें राज्य नहीं चाहिए।"

अर्जुन ने कहा, "तब आप भाईसाहब को पहचानते ही नहीं।"

"ऐसी बात नहीं है, अर्जुन ! मैं उन्हें तुमसे अधिक पहचानता हूं। एक बात तो तुमसे कह ही दूं। युधिष्ठिर वन में रहें या महल में विहार करें, जहां भी वह होंगे, वहीं प्रत्येक प्रसंग का विचार वह धर्म की दृष्टि से ही करेंगे। उनके मन की सारी बनावट ही इस प्रकार की है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ऐसे जीवन का निर्माण अनेक जन्मों के उच्च संस्कारों का ही परिणाम होता है, किन्तु इससे यह मान लेने का कोई कारण नहीं कि युधिष्ठिर को राज्य पसन्द नहीं है।" श्रीकृष्ण ने समझाकर कहा।

"श्रीकृष्ण ! आप तो बिल्कुल उल्टा ही कहते हैं। महाराज तो जब-जब कौरवों की बात उठती और मैं तथा भीमसेन लड़ाई का आग्रह करते तो वह शान्ति की ही बातें करते। आज आप कहते हैं कि 'उन्हें भी राज्य करना है !' यह बात हमारी बुद्धि में नहीं समाती ?" अर्जुन बोला।

"अर्जुन !" श्रीकृष्ण ने कहा, "यदि अभी नहीं मानते तो दो दिन बाद जब स्वयं अपनी आंखों से देख लोगे, तब मानना

पड़ेगा। राज्य तो युधिष्ठिर को भी चाहिए; उन्हें चक्रवर्ती राजा होना है, सिर पर मुकुट धारण करना है। किन्तु इस ध्येय तक पहुंचने के लिए रक्तपात हो और लहू की नदियां बहें, यह उनसे देखा नहीं जाता। इसलिए यह सब दया और क्षमा के उद्गार प्रकट किये जाते हैं। युधिष्ठिर धर्म के पुत्र हैं; लोग उन्हें अजातशत्रु कहते हैं, वह ठीक है। किन्तु उनका धर्म कोमल धर्म है। समस्त जगत् के धर्म के दो पक्ष होते हैं, एक कोमल और दूसरा उग्र। इसीलिए जगत की शक्ति जगदम्बा का रूप धारण करती है और काली का रूप भी धारण करती है। महाराज युधिष्ठिर स्वभाव से कोमल हैं, इस लिए क्षत्रिय बालक होते हुए भी यदि लहू की नदियां बहने लगें तो उनके तन्तु ढीले हो जाते हैं और उनका मन घबराता है। इसीलिए जहांतक क्षमा और शान्ति से राज्य मिलता हो, वहां तक लड़ाई की जोखिम उठाना उन्हें पसन्द नहीं आता।"

"किन्तु श्रीकृष्ण! क्या इस प्रकार किसी को राज्य मिला है? राज्य तो सिर के बदले मिलने वाली वस्तु है।" अर्जुन ने कहा।

श्रीकृष्ण बोले—"अर्जुन, तुम्हारा कहना ठीक नहीं है। ऐसे मार्ग दुनिया में हैं कि मनुष्य शत्रु को मारे बिना स्वयं शत्रु के हाथ मरकर विजय प्राप्त करता है।"

अर्जुन ने चकित होकर कहा, "क्या कहते हैं आप! कहीं मजाक तो नहीं कर रहे?

"अर्जुन?" श्रीकृष्ण ने गम्भीर मुद्रा बनाकर कहा, "यह मानना कि इस जगत में काम करने के ईश्वरीय मार्ग मर्यादित हैं, ईश्वर की शक्ति के विषय में अज्ञान प्रकट करना है। स्वयं

मरकर विजय प्राप्त करने का मार्ग आज तेरी समझ में नहीं आयगा। भारतवर्ष की जलवायु में इस मार्ग के उपयुक्त मानस, इस मार्ग को स्वीकार करने योग्य हृदय तैयार नहीं है। अर्जुन! शत्रु के सिर उड़ा देने को आज पराक्रम समझा जाता है, किन्तु यही एक दिन जंगलीपन समझा जायगा और समस्त मानव-समाज दूसरे को मार डालने के विचार को सर्वथा असह्य मानेगा। किन्तु आज तो जब तुम सभी क्षत्रिय तलवारें खनखना रहे हो, तब यह बात कल्पना में भी कैसे आ सकती है? अर्जुन! चिंता न कर, आखिर में युधिष्ठिर तुम्हारे और भीमसेन के विचार से सहमत हो जायेंगे, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।"

अर्जुन ने कहा, "यह तो आप जानें। पर मुझे तो लगता है कि भाईसाहब लड़ाई के लिये स्वीकृति न देंगे और हमको उनकी इच्छा के विरुद्ध जाकर लड़ना पड़ेगा।"

"ऐसा नहीं होगा।" श्रीकृष्ण बोले, "मुझे आज तो युद्ध के अलावा दूसरा मार्ग दिखाई नहीं देता। फिर भी यदि युद्ध के बिना शांति से सबकुछ तय हो जाय तो इसमें तुम्हें क्या आपत्ति है?"

"कुछ भी नहीं।" अर्जुन ने कहा।

"मैं तो इसी मार्ग का अवलम्बन करके देखना चाहता हूं।" श्रीकृष्ण बोले, "मैंने महाराज द्रुपद और धृष्टद्युम्न के साथ भी बातें की हैं।"

"ये सब तो लड़ाई के लिए बेचैन हैं। बाधा केवल भाई-साहब की ही है।" अर्जुन ने कहा।

५ / गुरुजनों का आशीर्वाद

पाण्डवों और कौरवों के बीच चल रही संधि-चर्चा टूट गई। द्रुपद का पुरोहित निष्फल रहा, संजय विफल रहा महाराज श्रीकृष्ण भी निष्फल रहे और इसकी तो सम्भावना ही कहां थी कि शकुनि-पुत्र उलूक सफल होता ?

दोनों पक्ष युद्ध के लिए सज्जित खड़े थे। भारतवर्ष के ऐतिहासिक रणक्षेत्र में दुर्योधन और युधिष्ठिर कौरव-सिंहासन के उम्मीदवार के रूप में खड़े हुए। यह असमंजस सभी के मन में था कि यह अठारह अक्षौहिणी सेना भारतवर्ष का मुकुट किसके सिर पर रखेगी ?

कल दुन्दुभि का नाद होगा, शंख फूंके जायंगे, काल-सदृश धनुषों में से सन-सन करते बाण छूटेंगे, गदा के प्रहार आरम्भ होंगे, आकाश धूल से आच्छादित हो जायगा, लहू की नदियां बहने लगेंगी, कितनी ही वीरांगनाएं विधवा हो जायंगी, कितने ही क्षत्रिय बालक पितृहीन हो जायेंगे, कितने ही वीर स्वर्ग सिधारेंगे। यह आगामी कल कैसा उदय होगा ?

आगामी कल उदय होने के पहले ही संध्या को युधिष्ठिर ने भीष्म और द्रोण से अन्तिम बार मिल आने का विचार किया और रथ में बैठकर भीष्म के खेमे में पहुंचे।

"कहो युधिष्ठिर ! इस समय कैसे आये ?" भीष्म ने पूछा।

"पितामह ! कल से युद्ध प्रारम्भ होने की घोषणा हुई है।" युधिष्ठिर ने कहा।

"हां।" भीष्म बोले, "कल मैं तुम्हारे सामने खड़ा होकर लड़ने वाला हूं।"

"यह हमारा सौभाग्य है!" युधिष्ठिर बोले, "इतने वर्षों तक हम वन में भटकते फिरे और अनेक बार समाधान के संदेश भेजे तो भी अन्त में तलवार ही सामने आई। पितामह-जैसे के बैठे हुए यह हो रहा है, मुझे केवल इसी का खेद है।"

"बेटा युधिष्ठिर! खेद न करो।" भीष्म ने कहा।

"पितामह! खेद कैसे न हो? इस युद्ध में सारे भारतवर्ष के क्षत्रिय इकट्ठे हुए हैं। मैं उनका विनाश देख रहा हूं। युद्ध के अन्त में समस्त भारतवर्ष में क्षत्रिय पुरुष ढूंढे से भी न मिलेगा। कौरवों का तो इसमें सत्यानाश ही हो जायगा और हमारी भी वही दशा होगी। लाखों हाथी, घोड़ों, रथादि का समूल नाश हो जायगा? सारे देश में चोर लुटेरों का त्रास फैल जायगा और सारी प्रजा त्राहि-त्राहि पुकार उठेगी। यह सब लड़ाई का परिणाम निकलेगा। इस परिणाम को रोकने के लिए मैंने शक्तिभर प्रयत्न किया, किन्तु मुझे निराश होना पड़ा।" युधिष्ठिर ने बड़े दुःखभरे स्वर में कहा।

"इसमें संदेह नहीं कि लड़ाई के परिणाम तो जैसा तुम कहते हो, वैसे अथवा उससे भी बुरे निकलेंगे।" भीष्म ने कहा, "लेकिन युधिष्ठिर मुझे इसकी परवा नहीं कि ये सब क्षत्रिय मृत्यु को प्राप्त होंगे। किन्तु युद्ध-काल में सारे देश में लड़ाई का ऐसा मानस उत्पन्न होगा कि लड़ाई समाप्त हो जाने के बाद भी कुछ काल तक वह मानस कायम रहेगा और इस कारण शांति स्थापित होने में बहुत समय लगेगा।"

"पितामह! यह तो होने ही वाला है।" युधिष्ठिर बोले,

"जब इन सब परिणामों का विचार करता हूं तो मन पीछे हट जाता है और कभी-कभी ऐसा विचार भी मन में पैदा होता है कि लड़ाई शुरू होने के पहले ही अपनी सात अक्षौहिणी सेना को लेकर यहां से चला जाऊं।"

"युधिष्ठिर!" भीष्म बोले, "तुम्हें ऐसा विचार होता होगा, यह मैं समझता हूं। किन्तु अब यह युद्ध तो होगा ही। पृथ्वी पर जब भीषण झंझावात होते हैं तो वह हमें अच्छे नहीं लगते। किन्तु वास्तव में जिस प्रकार ये झंझावात पृथ्वी की देह को साफ करते हैं, उसी प्रकार ये युद्ध चाहे जितना नुकसान क्यों न करते हों, तो भी समाज के मानस को अनेक प्रकार से साफ कर डालते हैं और मानव-हृदय में शान्ति के बहाने भय आदि का जो कूड़ा-कर्कट भर जाता है, उसे धो डालते हैं। धर्मराज युधिष्ठिर! मनुष्य के जीवन में धर्म-संकट खड़ा ही न हो तो क्या मनुष्य किसी दिन उन्नत हो सकता है? ऐसे मनुष्य को तो पशु ही समझना चाहिए। इसी प्रकार युधिष्ठिर! यह समस्त भारतवर्ष का धर्म-संकट है, कुरुक्षेत्र जैसे धर्म-क्षेत्र में हम यह युद्ध लड़ लेंगे तो सारा देश अवश्य हिल उठेगा, किन्तु इसमें शक नहीं कि इस विकम्पन में फिर से स्वच्छ पानी प्रकट होगा। इसलिए तुम दिल को मजबूत रखकर युद्ध करो। तुम्हें इस अठारह अक्षौहिणी सेना की हिंसा का पाप नहीं लगेगा, बल्कि देश के मानस को स्वच्छ करने का पुण्य मिलेगा। युधिष्ठिर, यदि समस्त देश में अधर्म के बदले धर्म की स्थापना हो तो इस अठारह अक्षौहिणी सेना-जैसी मामूली वस्तु का क्या मूल्य है?"

"पितामह!" युधिष्ठिर ने उठकर भीष्म के पांव छुए और बोले, "आपके चरणों में आया हूं। आपके आशीर्वाद का भूखा

हूं। आप अपना हाथ मेरे सिर पर रखकर मुझे कृतार्थ करें।"

"बेटा युधिष्ठिर!" भीष्म ने आशीर्वाद देते हुए कहा, "तुम्हें मेरा आशीर्वाद है। तुम्हारा पक्ष धर्म का पक्ष है। मैं दुर्योधन की दुष्टता जानता हूं और बताता हूं, किन्तु उसके पक्ष को नहीं छोड़ता, इतना मेरे हृदय के रक्त को ठन्डा समझना। युधिष्ठिर! जाओ, तुम्हारी विजय होगी। अर्जुन को जाकर कहना कि मुझे वृद्ध मानकर मुझ पर जरा भी दया न करे। वृद्ध सेवा के अधिकारी हैं, किन्तु विरोधी पक्ष में खड़े हों तो दया के नहीं, वध के पात्र हैं। जाओ, कुन्ती-पुत्र! ईश्वर तुम्हारा कल्याण करे।"

युधिष्ठिर ने भीष्म को एक बार फिर नमस्कार किया और वहां से विदा हुए।

□

भीष्म के खेमे से निकलकर युधिष्ठिर द्रोणाचार्य के खेमे में गये और उनके पांवों में गिर पड़े।

"युधिष्ठिर, युधिष्ठिर!" द्रोण बोल उठे, "यह क्या करते हो?"

"कल आपके विरुद्ध लड़ना है, इसलिए आज आशीर्वाद मांगता हूं।" युधिष्ठिर ने कहा।

"तुम पर सच्चा आशीर्वाद तो ईश्वर का है।" द्रोण गंभीर वाणी में बोले।

"आप हमारे गुरु हैं। आपने हमें युद्ध की शिक्षा दी है। आजतक आप हमको अपनी प्रजा के समान समझते आये हैं।..." युधिष्ठिर ने कहा:

"युधिष्ठिर! ये सब बातें रहने दो। जब यह सब सुनता

हूं तो मन में कितनी ही चिनगारियां एक साथ सुलग उठती हैं।" द्रोण ने कहा।

"आचार्य ! हम आपके बालक हैं।" युधिष्ठिर बोले।

'युधिष्ठिर ! ये बातें छोड़ो, इन सब विषयों को बड़े परिश्रम से हृदय के एक कोने में मैंने छिपाकर रख छोड़ा है और उन पर बड़ा मजबूत्त लोहे का ताला लगा दिया है। फिर भी कोई-कोई ऐसी एकाध बात ऊपर उभर आती है तो कई-कई दिन तक नींद नहीं आती।" द्रोण ने कहा।

"गुरुदेव ! आशीर्वाद दीजिए।" युधिष्ठिर आर्त स्वर में बोले।

"ऐसा लगता है कि आज आशीर्वाद देने का मेरा अधिकार ही नहीं रहा।" आचार्य ने कहा, "युधिष्ठिर ! तुम्हारे जीवन के इतने विविध दुःखों में किसी दिन तुम्हारे उष्ण हृदय को मैंने शीतल नहीं किया, तुम्हारे जख्मों पर मरहमपट्टी नहीं की, तुम्हारे आँसुओं को नहीं पोंछा, तुम्हारी अन्तर्ज्वालाओं को नहीं बुझाया, वह द्रोण आज तुम्हें किस मुंह से आशीर्वाद दे ?"

"आचार्य ! आप यह क्या कहते हैं ?"

"सच कहता हूं, तुम्हें तो अपनी धर्म-बुद्धि का ही आशीर्वाद प्राप्त है। मेरे-जैसे आचार्य जो अपनी विद्या को बेचकर बैठे हों उनके आशीर्वाद में बल भी कहां से होगा ? जाओ, मुझे लज्जित मत करो।" द्रोण ने व्यथापूर्वक कहा।

"गुरुदेव ! मुझे निराश मत कीजिए। आप अपने बड़प्पन को स्वीकार न करें, किन्तु यह निश्चित है कि मुझे तो आपके आशीर्वाद लेने के बाद ही यहां से जाना है।"

"तो ठीक है। जाओ युधिष्ठिर, द्रोण के आशीर्वादों का

यदि आज कुछ मूल्य रहा हो—तो तुम्हें मेरे आशीर्वाद हैं। प्रसन्नतापूर्वक युद्ध आरम्भ करो और मेरे-जैसे बूढ़ों को समाप्त कर भारतवर्ष में नवयौवन का संचार करो। युधिष्ठिर! जाओ, अर्जुन को बिना माँगे मेरे आशीर्वाद हैं। ऐसे शिष्य के हाथों पराजय पाने का मेरा सौभाग्य कहां?" इतना कहकर द्रोण ने युधिष्ठिर के सिर पर हाथ रक्खा और युधिष्ठिर फिर एक बार उनको नमस्कार करके अपने खेमें में लौट गये।

६ / 'नरो वा कुंजरो वा'

कुरुक्षेत्र के मैदान में महाभारत हो रहा है। एक ओर ग्यारह अक्षौहिणी सेना और दूसरी ओर सात अक्षौहिणी सेना; एक ओर पांच पाण्डव और दूसरी और सौ कौरव; एक ओर हाथ में शस्त्र जैसी कोई वस्तु न ग्रहण करने की प्रतिज्ञा लेकर आये हुए श्रीकृष्ण और दूसरी ओर उनकी अपनी समस्त सेना; एक ओर श्वेत दाढ़ी वाला नैष्ठिक ब्रह्मचारी भीष्म और दूसरी ओर पुरुष की आकृति मात्र रखने वाला शिखण्डी; एक ओर धनुर्विद्या के आचार्य द्रोण और दूसरी ओर उनके मित्र द्रुपद का पुत्र धृष्टद्युम्न।

युद्ध के दसवें दिन भीष्म जब शक्तिहीन होकर गिर पड़े, तो उनके स्थान पर द्रोण कौरवदल के सेनापति बने। द्रोण जाति से ब्राह्मण, धनुर्विद्या के समर्थ आचार्य होते हुए भी उनके शरीर में रक्त नहीं था। पर अर्जुन पर उनकी असाधारण प्रीति थी। अर्जुन से कोई आगे न बढ़ जाय, इसलिए उन्होंने भील-कुमार एकलव्य का अगूठा कटवा लिया। युद्ध शुरू हुआ तो

अर्जुन ने द्रोण के चरणों में दो बाण फेंके और आचार्य ने दो बाण अर्जुन के सिर पर फेंककर उसे आशीर्वाद दिया।

किन्तु वही द्रोण आज बदल गये। आज के द्रोण ब्राह्मण नहीं रहे। आज के द्रोण अर्जुन के गुरु नहीं रहे। आज के द्रोण तो पाण्डव सेना के काल-रूप थे। उनका ब्रह्मतेज, उनकी श्वेत दाढ़ी, उनके कठोर हाथ, उनकी तीक्ष्ण विद्या और पांचालराज द्रुपद के प्रति उनका पुराना वैर, यह सब मिलकर आज पृथ्वी को पाण्डवों से शून्य करने निकल पड़े। द्रोण का प्रिय अर्जुन उनके सामने आया और गुरु से प्राप्त रहस्य द्वारा लड़ने लगा। किन्तु स्वयं रहस्य के दृष्टा के आगे रहस्य कैसे टिकता! अर्जुन को रथ में मूर्च्छा आयी और श्रीकृष्ण ने रथ मोड़ लिया। भीम सामने आया। भीम अर्थात् प्रमत्त बल। उसने कूद-कूद कर आचार्य के रथ को तोड़ना शुरू किया, किन्तु युद्ध-कला में प्रवीण आचार्य ने उसे पराजित कर दिया और भगा कर छोड़ा। धीर गम्भीर युधिष्ठिर महाराज सामने हुए ही थे कि पीछे हटना पड़ा।

द्रोणाचार्य भयंकर विनाश लीला कर रहे थे। मध्यान्ह होने आया। योद्धा एक के बाद एक करके गिर रहे थे; हाथी, घोड़े जमीन पर सोते जा रहे थे; द्रोण के बाण शत्रु को बींध रहे थे; धृष्टद्युम्न की सेना शीघ्र गति से क्षीण होती जा रही थी; दुर्योधन का उत्साह आसमान को छू रहा था। श्रीकृष्ण विचारने लगे; अर्जुन सोच में पड़ गया; भीम तो कुछ-न-कुछ कर डालने की मन में सोचने लगा; युधिष्ठिर के मन में विजय के विषय में शंका पैदा हो गयी।

"युधिष्ठिर! मामला गम्भीर होता जा रहा है।" श्रीकृष्ण

ने कहा ।

"महाराज ! क्या करें ?"

"आज का रंग कुछ और ही है । आज सवेरे से जिस प्रकार द्रोण लड़ रहे हैं, उसी प्रकार तक संध्या तक लड़ते रहे तो हमारी सेना के एक भी मनुष्य के जीवित रहने की सम्भावना नहीं ।" श्रीकृष्ण बोले ।

"द्रोण के बाणों में इतना विष है, यह मुझे आज ही मालूम हुआ। यह विद्या तो उन्होंने मुझे भी नहीं सिखाई ।" अर्जुन ने बात को पूरा करते हुए कहा ।

"यह तो सब ठीक है । अब इस मामले को कैसे निबटावें, इस पर विचार करो । बाण का विष तो जान लिया !" भीमसेन बोला ।

"क्यों, युधिष्ठिर ! आप कुछ क्यों नहीं बोलते ?" श्रीकृष्ण ने कहा ।

"मुझे तो कुछ सूझता ही नहीं । पितामह के पतन के बाद तो ऐसा प्रतीत होने लगा था कि अब विजय अपनी ही है, भले ही लड़ाई जबतक चलनी हो, चलती रहे । किन्तु आज मुझे लग रहा है कि लड़ाई तो आज शाम को ही पूरी हो जायगी और..." युधिष्ठिर आगे बोल नहीं पाये ।

"मुझे भी ऐसा ही लगता है ।"

"तो फिर इसमें से निकलने का कोई रास्ता है ?" भीम ने पूछा ।

"रास्ता तो सब बातों का होता है, तो इसका भी होगा ही ।" श्रीकृष्ण बोले ।

आप ही रास्ता बताओ । आजतक आपके बताये हुए रास्ते

पर हम चलते आये हैं।" युधिष्ठिर ने कहा।

"रास्ता तो यह है कि द्रोण किसी युक्ति से अपने शस्त्र छोड़ दें। जबतक इस ब्राह्मण के हाथ में शस्त्र हैं, तब तक तुम अपने जीवित रहने और विजयी होने की आशा नहीं कर सकते।" श्रीकृष्ण बोले।

"किन्तु वह शस्त्र छोड़ेंगे किस रीति से ?" भीम ने प्रश्न किया।

"यदि द्रोण यह सुन लें कि उनका पुत्र अश्वत्थामा मर गया, तो वे तुरंत शस्त्र त्याग देंगे। द्रोण का सारा जीवन अश्वत्थामा पर निर्भर रहा है। किसी भी प्रकार 'अश्वत्थामा मर गया' यह शब्द उनके कान में पड़ने चाहिए।" श्रीकृष्ण ने मार्ग बताया।

"किन्तु अश्वत्थामा जीवित हो, और वह 'मर गया', ऐसे शब्द कान में डालना, इस प्रकार का अधम कैसे हो सकता है ?" युधिष्ठिर स्तम्भित हो उठे।

"आप जो कहते हैं, वह उचित है।" श्रीकृष्ण ने कहा, "धर्म तो वही है, जो आप कहते हैं। किन्तु यहां तो विजय का प्रश्न है। धर्म की अपेक्षा विजय प्रिय हो, तो ऐसा ही करो। दूसरा और कोई उपाय नहीं है।" श्रीकृष्ण ने कहा।

"श्रीकृष्ण ! आप जो कुछ कहें, ठीक है, लेकिन यह उपाय अपनी वीरता के लिए शोभाप्रद नहीं।" अर्जुन ने पीठ फेर ली।

"अब तुम सब अपने रास्ते जाओ और लड़ाई करो। मैं देख लूगा कि मुझे क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए।"

"भीमसेन ने सबको एक ओर किया और स्वयं मालवों की टुकड़ी की ओर बढ़ गये।

मालवराज का एक हाथी था। उसका नाम था अश्वत्थामा। मालवराज पाण्डवों की सेना की ओर से लड़ते थे। भीम ने मालवराज के अश्वत्थामा नामक हाथी को मार डाला और शोर मचाया, 'अश्वत्थामा मारा गया! अश्वत्थामा मारा गया!"

और भीम की आवाज द्रोणाचार्य के कानों तक पहुंचे बिना कैसे रहती ?

द्रोण के कान में भनक पड़ी, "अश्वत्थामा मारा गया।"

"ऐं, कौन कहता है ?" द्रोण ने पूछा।

"यह भीमसेन कह रहा है कि आपका पुत्र अश्वत्थामा मारा गया।"

द्रोण बोले, "भीम झूठा है। मेरा पुत्र अश्वत्थामा इस प्रकार मरने वाला नहीं है। भीम, इस प्रकार प्रवाद फैला कर मेरे शस्त्र छुड़वाकर बच जाना चाहते हो ? अरे, आज संध्या तक देख लेना क्या होता है। मैंने दुर्योधन का नमक खाया है। आज मेरा अन्तिम दिन है।"

भीम के शोर मचाने से द्रोणाचार्य अधिक भड़क उठे और दूने वेग से लड़ने लगे। इसी समय सामने द्रुपद के बीस हजार पांचालों को देखकर द्रोण की आंखें चढ़ गईं; उनकी बाहें फड़क उठीं! उन्होंने ब्रह्मास्त्र फैंका। द्रोण का ब्रह्मास्त्र! बेचारे पांचालों की इसके सामने क्या हस्ती ? बीस-के-बीस हजार स्वाहा हो गये।

किन्तु तुरन्त ही अंतरिक्ष में ऋषि-गण दिखाई दिये—वसिष्ठ विश्वामित्र, जमदग्नि, भारद्वाज आदि।

"द्रोण! तुम्हारा समय पूरा होने आया है। तुम ब्राह्मण हो! ब्राह्मण को यह युद्ध-जैसा क्रूर कर्म शोभा नहीं देता।

यह कैसे भूल रहे हो कि हमारा जन्म संसार में शांति स्थापित करने के लिए होता है ?

द्रोण ने ऊपर देखा। अपने रक्त-रंजित हाथों से सबको नमस्कार किया और अपनी उग्रता के पीछे छिपी हुई शांति का थोड़ी देर के लिए स्मरण किया।

"द्रोण ! तुम तो धनुर्विद्या के आचार्य हो। ये पाण्डव और कौरव तुम्हारे शिष्य हैं। तुम इन गरीब पांचालों पर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करो, क्या तुम्हें शोभा देता है? ये दीन तो ब्रह्मास्त्र का नाम तक नहीं जानते, उन पर इसका प्रयोग करके तुमने अधर्म-युद्ध किया है और धनुर्विद्या के नियम को भंग किया है। उसकी खातिर तुम्हें प्रायश्चित्त करना चाहिए। अब भी विचार करो। अपनी जाति को भलकर इस प्रकार युद्ध में प्रवृत्त होना उचित नहीं है।"

यह कह कर ऋषि अन्तर्धान हो गये, किन्तु द्रोण के दिल में चोट लगी। उनके हाथ ढीले पड़ गये, उनके कपाल पर पसीना आ गया; उनके शस्त्रों की धार कुण्ठित-सी हो गई। उन्हें ग्लानि उत्पन्न हुई और ऐसा लगा, मानो उनसे कोई घोर कुकर्म हो गया है।

"वशिष्ठ और विश्वामित्र जैसे ऋषि जब कहते हैं तो मुझे इसी कार्य से विरत होना चाहिए।" द्रोण विचारने लगे, "और यह सब किसलिए ? जिस अश्वत्थामा के लिए मैं जी रहा हूं, यदि वह अश्वत्थामा मर ही गया हो, तो फिर मुझे प्रतीक्षा भी क्यों करनी चाहिए ?" द्रोण व्याकुल हो गये। उनके गात्र ढीले पड़ने लगे; उनकी आंखों के आगे अंधेरा छा गया। "किन्तु अश्वत्थामा इस प्रकार मरेगा नहीं। भीम ने कहीं झूठ-मूठ

उड़ा दिया हो। तो फिर लड़ाई का मामला है, शायद मेरा प्रिय पुत्र काम आ ही गया हो? फिर भी भीम का विश्वास नहीं। पूछना हो तो युधिष्ठिर से ही पूछना चाहिए। जन्म लेने के बाद से अब तक इसने कभी असत्य नहीं बोला। यह तो हस्तिनापुर का राज्य है, युधिष्ठिर तो त्रैलोक्य के राज्य के लिए भी असत्य नहीं बोलेगा। चलें, उसी से पूछ लें।"

द्रोण सेना के आगे आये और जोर से आवाज लगाई। "अरे पृथा-पुत्र युधिष्ठिर! आगे तो आओ। मुझे तुमसे एक बात पूछनी है।"

दोनों सेनाएं क्षण भर के लिए ठहर गयीं। हाथी, घोड़े, रथ आदि खड़े रहे। योद्धा कौतुक से देखने लगे और महाराज युधिष्ठिर का रथ पाण्डव सेना के आगे आया। उनके रथ के पास ही श्रीकृष्ण ने अर्जुन का रथ खड़ा किया।

"गुरुदेव! कहिये, क्या आज्ञा है?" युधिष्ठिर बोले।

"भीम कहता है कि अश्वत्थामा मारा गया, क्या यह सच है?"

युधिष्ठिर श्रीकृष्ण की ओर मुड़े। लम्बी चर्चा का समय न था। श्रीकृष्ण ने कहा, "महाराज युधिष्ठिर! द्रोणाचार्य यदि आज आधे दिन लड़ेंगे तो आपकी सेना का सफाया हो जायगा। आप तो इस समय धर्म-अधर्म को तराजू पर तौलने बैठे हैं; किन्तु अपनी सहायता के लिए आये हुए इन लाखों योद्धाओं के जीवन का भी विचार कीजिए। उनका जीवन आपकी तराजू में तुल रहा है। इसलिए बिना हिचकिचाए उत्तर दीजिए।"

भीम को तो केवल असत्य का ही सहारा था; किन्तु

युधिष्ठिर महाराज धर्म संकट में पड़ गये। जिस सत्य की जीवन-भर पूजा की उसे आज मिट्टी में मिला दूं? माता कुन्ती यह जानेगी तो क्या कहेगी? किन्तु नहीं, नहीं, केवल अपने ही सत्य पर डटे रहकर सारी सेना को नष्ट करवाना मेरा धर्म नहीं है। श्रीकृष्ण उचित कहते हैं।" युधिष्ठिर बोलने को उद्यत हुए।

फिर विचार आया—"और यह बात भी है। जिस हेतु से यह सारा युद्ध शुरू हुआ है, उस हेतु को एक ओर रख दें तो फिर जीवन में रहा ही क्या? विजय तो मिलनी ही चाहिए। विजय की खातिर क्या इतना भी न किया जाय?"

फिर खयाल हुआ—"किन्तु असत्य से रंजित विजय क्या विजय है?"

"युधिष्ठिर!" द्रोण अधीर हुए—"युधिष्ठिर उत्तर दो। अश्वत्थामा मारा गया? मारा गया हो, तो इसमें झिझकने की कोई बात नहीं। आज यह बुरा समाचार सुनने के लिए भी द्रोण तैयार है।"

किन्तु "युधिष्ठिर उत्तर देने के लिए तैयार न थे। उनका हृदय सत्य और विजय के बीच में झूलने लगा। उनके शरीर में पसीना हो आया किन्तु आखिर वह बोले—"अश्वत्थामा हतः!"

किन्तु दूसरे ही क्षण उनके मन में प्रश्न हुआ—"पर अश्वत्थामा तो जीवित है न!" फिर मंथन शुरू हुआ—"युधिष्ठिर! ऐसा सफेद झूठ! तेरी सत्यवादिता कहां चली गई? भला, सच तो बोल!" और धर्मराज के मन में आया। लाओ, सच बोलने दो। और बोले—"नरो वा कुंजरो वा।"

"किन्तु देखना जीभ, ये शब्द द्रोण न सुन लें।" पाण्डवों

के अग्रज युधिष्ठिर ने सोचा—"ये शब्द बोलने अवश्य हैं, किन्तु इतने धीमे बोलना कि द्रोण न सुन सकें और अन्यथा समझ लिया जाय कि ये शब्द बोले गये थे।"

युधिष्ठिर गुनगुआये—"नरो वा कुंजरो वा...नरो वा कुंजरो वा...नरो वा कुंजरो वा !"...

"हमने तो जो सच था, वही कहा। अब द्रोण गुरु न सुनें और शस्त्र छोड़ दें तो हम क्या कर सकते हैं !" युधिष्ठिर ने अपने मन को सांत्वना दी।

युधिष्ठिर ते सत्य छोड़ा और द्रोण ने शस्त्र, युधिष्ठिर के मुख ने कांति छोड़ी, जगत् ने घड़ी-भर प्रकाश छोड़ा और दिशाएं काली हो गईं।

७ / शल्य के पास

युद्ध के सोलहवें दिन की मध्य रात्रि को महाराज युधिष्ठिर शल्य के खेमे में आये। महाराज शल्य अभी-अभी दुर्योधन के पास से ही चले आ रहे थे।

"कहो युधिष्ठिर ?" शल्य ने सत्कार करते-करते पूछा, "इतनी रात गये कहां से आ रहे हो ?"

"मामा तुमने तो गजब कर डाला।" युधिष्ठिर बोले।

"कैसे भाई ? ऐसा क्यों कहते हो ?" शल्य ने पूछा।

"मद्रराज शल्य !"... युधिष्ठिर ने कहना शुरू किया।

"मामा के बजाय मैं आज मद्रराज हो गया क्या ?" शल्य ने बीच ही में पूछा।

"अवश्य। मामा रहना था तो शल्य को दुर्योधन के साथ

पड़ाव न डालकर नकुल-सहदेव के साथ डालना चाहिये था।" युधिष्ठिर बोले।

"यह जो होना था सो हो गया।" शल्य बोला।

"तो फिर आज मैं भी क्या समझूं कि जो होना था सो हो गया?" युधिष्ठिर ने कहा।

"बात तो कहो कि है क्या?' शल्य ने पूछा।

"क्या यह सच है कि कल आप कर्ण के सारथी होकर उसका रथ हांकेंगे?" युधिष्ठिर ने पूछा।

"सच है।" शल्य बोला।

"क्या आपको मालूम है कि कल कर्ण-अर्जुन का युद्ध होने-वाला है?" युधिष्ठिर ने पूछा।

"इसीलिए तो कर्ण ने मुझे सारथी रूप में मांगा है। उसका आग्रह था कि अर्जुन के पास जैसे श्रीकृष्ण सारथी हैं वैसे ही उसके पास सारथी होना चाहिए।" शल्य ने कहा।

"किन्तु क्या आप अर्जुन के सामने खड़े रह सकेंगे? यदि आपने सारथी बनने से इन्कार कर दिया होता तो हम पर उपकार होता।" युधिष्ठिर ने कहा।

"युधिष्ठिर! मैं जानता हूं। तुम पर उपकार करने की बात तो एक ओर रही, अपने स्वाभिमान की खातिर मुझे सूतपुत्र का सारथी नहीं होना था, किन्तु क्या करूं? कुरुपति दुर्योधन ने खुद मेरी दाढ़ी में हाथ डाला तो इन्कार भी कैसे करता?" शल्य ने कहा।

"तो मामा! हमको तो आपने पूरा-पूरा आशीर्वाद दिया, क्यों?" युधिष्ठिर बोले।

"सारथी तो बन चुका, अब इसमें हेर-फेर नहीं हो सकता।

इसके सिवाय कोई और बात हो तो कहो ।" शल्य ने कहा ।

"है तो बहुत, यदि आप करना चाहें ।" युधिष्ठिर ने कहा।

"इसके सिवाय जो तुम कहोगे वही करूंगा ।"

"तो सारथी होते हुए भी आप अर्जुन की मदद कर सकते हैं ।" युधिष्ठिर बोले ।

"सो कैसे ?" शल्य ने पूछा ।

"आप रथ हांकते-हाकते अगर कर्ण को कठोर वचन सुनाकर उसके उत्साह को ठण्डा करते रहेंगे तो कर्ण अर्जुन के हाथों मारा जायगा ।" युधिष्ठिर बोले ।

"यह तो मैं यों ही कहने वाला हूं । वह कौवा रथ में बैठा-बैठा अपने मुंह अपनी बड़ाई करेगा तो वह मुझसे सहन नहीं होगा, अतः उसके लिए मेरे मुंह से दो बात निकल ही पड़ेगी । युधिष्ठिर ! यह मैं अवश्य करूंगा । यह तो अब महायुद्ध हो गया है और हमारे सैनिकों की संख्या इतनी कम हो गई है कि एक साधारण योद्धा के जीवन की भी कीमत आज बढ़ गयी है । अन्यथा मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि इस सूत-पुत्र का रथ ले जाकर एक खड्ड में गिरा दूँ, तो उसे भी मालूम हो जाय कि शल्य को सारथी बनाया था ! किन्तु आज तो दुर्योधन का जी मुट्ठी में आ गया है और मैं सब प्रकार की जोखिम उठाकर भी उसके साथ खड़ा रहना चाहता हूं । युधिष्ठिर ! जाओ अर्जुन की चिन्ता मत करो । उसके रथ पर तो श्रीकृष्ण हैं ।"

शल्य को वन्दन करके युधिष्ठिर अपने शिविर में लौट आये ।

८ / भीष्म की शर-शय्या के आगे

"बेटा ! अरे बेटा नहीं, महाराज युधिष्ठिर!" बाण -शय्या पर सोये हुए पितामह बोले ।

"पितामह ! मैं तो यही चाहता हूं कि महाराज नहीं, बल्कि सदैव आपका बेटा बना रहूं ।" युधिष्ठिर ने कहा । "कई बार मन में आता है कि इस झूठे राज्य वैभव को त्याग कर वन में चला जाऊं । इस राजमुकुट से मन को शान्ति नहीं मिल सकी ।"

"बेटा युधिष्ठिर ! आज अब वन में जाने का विचार केवल निर्बलता है ।" भीष्म ने कहा ।

"पितामह ! हस्तिनापुर का मुकुट धारण किये, अभी एक महीना ही हुआ है, इतने में ही मैं कुछ दब सा गया हूं ।" युधिष्ठिर बोले—"मैंने इस मुकुट में कांटे तो समझे थे, किन्तु यह नहीं समझा था कि उसमें लोहे के नोकदार सुए भी होंगे ।"

बेटा युधिष्ठिर !" भीष्म जरा स्वस्थ होकर बोले, "मैंने तो मुकुट धारण नहीं किया, किन्तु देख रहा हूं कि मैं इस लोहे की शय्या पर लेटा हुआ हूं जो मनुष्य समाज का नेता होता है, उसे एक दिन ऐसे शूलों के लिए तैयार रहना चाहिए । फिर तू तो सारे भारत का सम्राट हुआ, अतः यदि ऐसे शूलों से घबरायेगा तो कैसे काम चलेगा ?"

"पितामह! घबराता नहीं हूं । हस्तिनापुर का मुकुट धारण किया, उस समय तो यह खूब मधुर प्रतीत हुआ और घड़ी भर तो ऐसा मालुम हुआ कि अब लम्बे समय तक की थकावट उतारने का समय आ गया ।" युधिष्ठिर बोले ।

"थकावट उतारना ?" भीष्म हंस पड़े। "अब तो नई थकावट शुरू होगी। हां, युद्ध-काल की थकावट की अपेक्षा शांतिकाल की थकावट भिन्न प्रकार की होती है। अतः प्रकार भेद से पहले की थकावट उतर जाय तो इन्कार नहीं। किंतु मेरे हिसाब से थकावट अब शुरू होगी।"

"पितामह !" युधिष्ठिर बोले, "ऐसा ही हुआ है। पहले तो युद्ध का नशा था, अतः शरीर और मन दोनों में जोश था। अब नशा उतर गया है, अतः तमाम गात्र ढीले हो गये हैं और ऐसा मन में आता है कि कहीं जंगल में जाकर कोपीन पहनकर सो रहूं।"

"बेटा युधिष्ठिर !" भीष्म बोले, "यही निर्बलता है। यह निर्बलता ही धर्म के नाम पर अनेक लोगों को ठगती और संसार में परास्त करती है। तू इस निर्बलता को हटा दे और जिस दृढ़ता से इस युद्ध को चलाया है, उससे भी अधिक दृढ़ता-पूर्वक इस शूलयुक्त मुकुट को भी धारण कर।"

"पितामह !" युधिष्ठिर ने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया, "हस्तिनापुर के राजभवन की छत पर खड़ा होकर जब सारे भारतवर्ष पर नजर डालता हूं तो एक विशाल सूनापन मेरी आंखों के आगे आ जाता है और मैं इस सुनसान में से किस प्रकार नवभारत का निर्माण कर सकूंगा, यह विचार मन में निराशा-सी पैदा करता है। पितामह, कौरव-कुल के स्तम्भ रूप आप शर-शय्या पर सो गये और मेरे-जैसों के हाथ में यह महाभारत काम आया।"

"यह योग्य ही हुआ है", भीष्म ने उत्तर दिया, "बेटा, तूने और तेरे भाईयों ने दुर्योधन को 'अधर्मी' कहकर जगत-भर

में बदनाम किया। दुर्योधन के अधर्म का लाभ उठाकर तुमने देश भर से मदद प्राप्त की; दुष्टता का उपयोग करके तुमने अपने छोटे-मोटे अधर्मों को उसकी छाया में छिपा दिया, और इस प्रकार विजय प्राप्त की। कुन्ती-पुत्र युधिष्ठिर! आज समस्त संसार को उत्तर देने की तुम्हारी बारी आई है। यह निश्चय समझना कि तुम्हारे उत्तर से ही तुम्हारी विजय का महत्व आंका जायगा।"

"पितामह!" युधिष्ठिर बोले, "यह मैं बराबर समझता हूं। इसलिए कुछ हिम्मत हार-सा रहा हूं।"

"किन्तु इस प्रकार हारने से काम कैसे चलेगा? युद्ध में तुम सबने क्षात्र-तेज प्रगट किया था। क्या तुम समझते हो इस पुनर्रचना के लिए उससे कम क्षात्र-तेज की आवश्यकता है?" भीष्म ने पूछा।

उससे तो कहीं अधिक क्षात्र-तेज की आवश्यकता आज है। युद्ध में तो विकारों का प्रदर्शन हो तो भी वह क्षात्र-तेज दिखाई दे सकता है, किन्तु आज विकारों के प्रदर्शन से जरा भी काम नहीं चल सकता।" युधिष्ठिर बोले।

"तो एक बात का निश्चय कर लो। अभी पन्द्रह-बीस वर्ष तक तुमको वन जाने की बात भी नहीं करनी चाहिए। अरे! उसके समीप भी न जाना।" भीष्म ने कहा।

"आप ऐसा कहते हैं तो ठीक है।" युधिष्ठिर ने कहा।

"मैं ऐसा ही कहता हूं। युधिष्ठिर! तेरी अन्तरात्मा भी ऐसा ही कहेगी। यह निश्चय समझना कि यह श्मशान-वैराग्य दो दिन टिकेगा। अब तो तुझे राज्य का विचार करना है।" भीष्म बोले।

"आज तो राज्य मैदान बन रहा है।" युधिष्ठिर बोले।

"हरेक युद्ध के अंत में ऐसा ही होता है। किंतु, यह न भूल जाना कि नई सृष्टि के बीज भी इसी मैदान में पड़ते हैं।" पितामह बोले।

"हाँ, मैं भारतवर्ष की नव-रचना का विचार तो कर ही रहा हूं। हम भाइयों ने मिलकर उसकी कच्ची रूपरेखा तैयार भी की है।" युधिष्ठिर बोले।

"यह बहुत अच्छा किया। तुम भारत का पुनर्संगठन अपनी इच्छानुसार करना; मुझे भी इस विषय में जो थोड़ा-बहुत कहना है, वह कहे देता हूं।" भीष्म ने कहा।

"पितामह! अवश्य कहिये! आप जगत के समस्त शास्त्रों के भंडार हैं, अतः आपके पास से तो हमें सदा बहुत-कुछ सीखने के लिए रहता है। आज आपको जो कुछ कहना हो, वह कह दें तो बड़ा अच्छा हो।" युधिष्ठिर यह कहते हुए जरा और पास खिसक आए।

"युधिष्ठिर सुनो!" भीष्म बोले, "इस महायुद्ध के कारण कितनी ही दिशाओं में ईर्ष्या-द्वेष उत्पन्न हो गया है। युद्ध के फलस्वरूप सारा देश छिन्न-भिन्न हो गया है। युद्ध में अनेक क्षत्रिय रण-क्षेत्र में सो गये, किंतु उन क्षत्रियों ने और तुमने ईर्ष्या-द्वेष की जो लहरें फैलाई हैं, वह कहीं चली नहीं गई हैं। ये लहरें तो अब भी हवा में फैल रही हैं, और जहां-जहाँ इन लहरों को स्थान देने वाले अंतःकरण मिल जाते हैं, वहां-वहां वे प्रवेश कर जाती हैं। समस्त देश के वायुमण्डल में से इस ईर्ष्या-द्वेष को नष्ट करना तुम्हारा पहला धर्म है।"

"पितामह!" युधिष्ठिर हाथ जोड़कर बोले, "आपने

बड़े महत्व की बात कही।"

"इस ईर्ष्या-द्वेष को नष्ट करने की तुम्हारे दिल में सच्ची लगन है, ऐसा लोग महसूस करेंगे, तभी तुम पर उनका विश्वास जमेगा। अपने शत्रुओं को तुमने मार डाला है, किंतु उनकी स्त्रियां और बालक तुम्हारे शत्रु नहीं हैं। इन स्त्रियों और बालकों को केवल सहानुभूति के शब्दों से ही नहीं, बल्कि बाकायदा आश्रय देकर अपनी ओर करना। सारे देश की प्रजा को अपने कार्यों से बता दो कि तुम्हारे ख्याल में अब तुम्हारा कोई शत्रु नहीं और दुर्योधन के अधर्म के स्थान पर तुम धर्म और शान्ति स्थापित करना चाहते हो।" भीष्म कहने लगे।"

"पितामह! कहे जाइये! मुझे बड़ा रस आ रहा है।" युधिष्ठिर बोले।

"दुर्योधन अन्त समय तक अधर्म का आचरण करता रहा और मेरे-जैसा व्यक्ति उसके अधर्म को जानते हुए भी उसको नहीं रोक सका यह बात मुझे आज भी चुभती रहती है। युधिष्ठिर! यह सत्ता ऐसी ही वस्तु है कि यदि लम्बे समय तक किसी एक व्यक्ति के हाथ में टिक जाय तो उस व्यक्ति की आंखें आसमान पर चढ़ जाती हैं। शुरू में मनुष्य योग्यता के बल पर सत्ता प्राप्त करता है, किंतु बाद में मनुष्य सत्ता के बल पर योग्यता गंवा बैठता है। संसार भर के इतिहास में ऐसा ही हुआ है और इसी कारण विभिन्न देशों में और विभिन्न कालों में, राजाओं की ऐसी सत्ता पर अंकुश लगाना पड़ा है।" भीष्म बोले।

"पुराने काल में भी क्या सत्ता का दुरुपयोग हुआ था?" युधिष्ठिर ने पूछा।

"अनेक बार ऐसा हुआ है। ब्राह्मणों के हाथ में सत्ता आई और टिकी तो उन्होंने भी दुरुपयोग किया। क्षत्रियों ने भी ऐसा ही किया। सत्ता का यह स्वभाव ही है। अतः तुम भी अपनी आंखें आसमान पर चढ़ने के पहिले ही अपनी सत्ता पर अंकुश लगा लेना, अन्यथा तुम दुर्योधन से भी अधिक अधर्मी हो जाओगे, और तुम्हें हटाने के लिए ईश्वर के घर से कोई दूसरे भीम अर्जुन जन्म लेंगे।" भीष्म ने कहा।

"पितामह! हम क्या करें कि जिससे हमारी आंखें आसमान पर न चढ़ें?" युधिष्ठिर ने पूछा।

"इसके थोड़े-से, मनुष्य द्वारा बनाये गए मार्ग हैं। पुराने समय में ऐसे प्रसंगों पर लोकसत्तात्मक राज्य ही स्थापित होते थे और राजा भी अमुक समय तक ही राजा रह सकता था। इस प्रकार की अनेक योजनाएं बनाई जाती थीं। भीष्म बोले।

"क्या आज भी वैसा हो सकता है?" धर्मराज ने प्रश्न किया।

"नहीं, सारा भारतवर्ष इसके लिए तैयार नहीं हुआ है। किंतु देश को इस मार्ग के लिए तुम तैयार कर सकते हो और साथ-साथ अपने व्यक्तित्व पर भी अंकुश लगा सकते हो।" भीष्म बोले।

"पितामह! कृपाकर यही बताइये। साम्राज्य की यह सत्ता हमको गलत रास्ते न ले जा सके, इसका उपाय विशेष रूप से बताइये।" युधिष्ठिर बोले।

"इसका सबसे बड़ा उपाय यह है कि सारे भारतवर्ष की प्रजा को शिक्षा दी जाय। दुर्योधन ने अनेक अधर्म किये और हम स्वयं अपनी आंखों से देखते हुए भी कुछ न कर सके। कारण

कि हमें इस तरह की शिक्षा नहीं मिली थी। तुमको वनवास दिया तो बेचारी हस्तिनापुर की प्रजा रोती-रोती तुम्हारे पीछे आई; जब द्रौपदी के वस्त्र खींचे गये तो सब राजा दीन मुख हो देखते रहे। तुम द्वैतवन में गये तो ब्राह्मण बेचारे अग्निहोत्र लेकर तुम्हारे साथ आए। किन्तु अपनी मान्यताओं को प्रगट करने का बल किसी में न था, इसलिए इतना अधर्म चल सका। युधिष्ठिर! दुर्योधन को स्वयं भी अंत तक मालूम नहीं पड़ा कि समस्त प्रजा हृदय से पाण्डवों के साथ है। किन्तु यह भी भुला दिया जाता है, अन्यथा किस राजा की ताकत है कि प्रजा की पुकार की उपेक्षा करके एक घड़ी भी सिंहासन पर बैठा रह सके? प्रजा की इस प्रकार की पुकार, सत्ता के तमाम कार्यों पर गरुड़ जैसी नजर रखने की शक्ति और स्वतंत्र विचारों को प्रगट करने की शक्ति ये दो चीजें पैदा हो जायं तो बड़े-बड़े घमण्डी राजा बुरे मार्ग का अवलम्बन करने से पहले दस बार सोचेंगे। तुम्हारे राज्य में और कुछ होना हो, वह भले ही हो, किन्तु सारे देश के बालकों और नवजवानों को ऐसी शिक्षा देने की योजना अवश्य करना। ऋषि-मुनियों के आश्रमों में भी यह नया तत्त्व प्रविष्ट करने की खास आवश्यकता है। इन आश्रमों में गुरुसेवा के महत्वपूर्ण तत्व के साथ यदि यह निर्भयता का तत्व सिखाया जायगा तो आश्रमों के जीवन में विशेष तेज आ जायगा और भारत की प्रजा इस युद्ध में तपकर सुवर्ण सदृश कांतिमान हो जायगी।"

"पितामह, अपनी समस्त प्रजा में इस तत्व का प्रचार करने की मैं यथाशक्ति कोशिश करूंगा।" युधिष्ठिर ने कहा।

"अब तीसरी बात। सारे भारतवर्ष में आज अनेक जातियां बसती हैं—नाग, दानव, राक्षस, भूत, आर्य, वानर, देव आदि

ये सब जातियां एक-दूसरे से जीवन में अनेक प्रकार से भिन्न हैं। इन लोगों की भिन्नता तो मुझे पसन्द है, कारण ऐसी भिन्नता में ही उनका प्राण है। किन्तु ये सब जातियां अपनी भिन्नता को कभी भूलती ही नहीं और जब सारे देश का प्रश्न उपस्थित हो तो भी वह पृथकता के आधार पर विचार करती हैं। यह ठीक नहीं है। इस युद्ध ने अनेक ऐसी जातियों को एक-दूसरे के सम्पर्क में ला दिया है। अतः ये लोग एक-दूसरे को पहचानने लगे हैं। पृथकता की दीवारें कुछ हद तक टूटी भी होंगी; किन्तु और भी टूटने की आवश्यकता है। तक्षक भले ही सर्प जाति के हों, किन्तु वह भी भारतवासी तो हैं ही। यह विचार उनके रक्त में घुल मिल जाना चाहिए। अलंबुष राक्षस था तो भी वह भारतवासी ही था, ऐसा हमको समझना ही चाहिए। भारतमाता की ऐसी जीती-जागती भावना देश में एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैल जानी चाहिए।" भीष्म बोले।

"पितामह! अवश्य ही करूंगा। आगे कहिए।" युधिष्ठिर बोले।

"बातें तो ऐसी बहुत ही हो सकती हैं और जब तक मैं जीवित हूं, तब तक किया ही करूंगा। पर आज तो इतना ही काफी होगा।" भीष्म बोले।

"पितामह! आपने मुझपर बड़ा उपकार किया है। ऐसे उपकारों का तो युधिष्ठिर नित्य ही भूखा रहेगा।" युधिष्ठिर ने कहा।

युधिष्ठिर! आज अब श्वास चढ़ने लगा है। अब फिर कभी दूसरे समय बात करेंगे। अभी तो द्रव्य, व्यापार, खेती, ब्राह्मण, राज्यतन्त्र कर आदि अनेक बातें बाकी हैं। देश के

गरीब लोगों का प्रश्न तो अभी मैंने उपस्थित ही नहीं किया।" भीष्म बोले।

"पितामह! अब आज बन्द कीजिए। कल फिर सेवा में उपस्थित होऊंगा। आज अधिक कष्ट न करें।" युधिष्ठिर बोले और भीष्म को हवा करते कुछ देर वहीं खड़े रहे।

९ / आखिरी मंजिल

"महाराज!" अर्जुन ने कहा—"मेरी लज्जा की तो सीमा ही नहीं रही।"

युधिष्ठिर एक ऊंचे सिंहासन पर बैठे थे, उस पर से उतरकर अर्जुन के पास मंच पर आ बैठे और बोले—"प्रिय भाई तू कहता है, वह मेरे मानने में नहीं आता।"

"बड़े भय्या, मानो अथवा न मानो।" अर्जुन कहने लगा, "यही मेरा गाण्डीव, यही मेरा तरकश, यही मेरे दोनों हाथ और यही गोह का चमड़ा बांधने का मेरा अंगूठा, किन्तु ये सब निष्फल रहे और मोटी-मोटी लाठियों वाले लुटेरों ने मुझे लूट लिया।"

"अर्जुन!" युधिष्ठिर आश्चर्य-चकित नेत्रों से सामने देखते हुए बोले—"श्रीकृष्ण हमें कहते थे, वही यह काल है। प्रिय भाई! दुर्योधन के साथ लड़ते समय हमने देशभर में जो युद्ध का वातावरण पैदा किया, उसकी लहरें ठेठ द्वारिका तक पहुंचीं। भगवान् व्यास ने एक बार मुझे कहा था कि जगत में ईर्ष्या-द्वेष की लहरें एक बार उत्पन्न कर देने के बाद उनको रोक सकना महा कठिन होता है। हमारा ईर्ष्या-द्वेष कुरुक्षेत्र में उत्पन्न हुआ

और वही ठेठ द्वारिका में भी उत्पन्न हुआ।"

"बड़े भय्या ! आप जो कहते हैं, ठीक है। मैं द्वारिका गया, वहां तो सब कुछ नष्ट होकर खंडहर हो गया है। सुभद्रा से विवाह किया, उस समय जो द्वारिका थी, वह द्वारिका ही नहीं रही। यादव सब शराब पीकर मूसलों से लड़े और सारे यादव-कुल का नाश हो गया ?"

"यही काल है।" युधिष्ठिर बोले, "इसीलिए श्रीकृष्ण भी प्रभास-क्षेत्र में सोये और देह त्याग दी।"

"बड़े भय्या, मैं तो उन्हें भूल ही नहीं सका। उनकी स्त्रियों को लेने द्वारिका गया तो महल श्मशान-जैसा लगा। रात को सोया ता क्या देखता हूं कि श्रीकृष्ण मेरा रथ हांक रहे हैं और मैं रथ में पड़ा हूं। इतने में तुरन्त रथ का पहिया लेकर वह भीष्म की ओर दौड़े। किन्तु जागकर देखता हूं तो वहां रथ भी नहीं और कृष्ण भी नहीं। बड़े भय्या, श्रीकृष्ण के बिना अब जीवन नीरस प्रतीत होता है।" अर्जुन का गला भर गया।

"मुझे भी ऐसा लगता है। तुम्हें लगे इसमें क्या आश्चर्य !" युधिष्ठिर बोले, " तेरी और श्रीकृष्ण की आत्मा तो एक ही थी, केवल शरीर भिन्न था।"

"बड़े भय्या यह उनका बड़प्पन था। आज जब श्रीकृष्ण नहीं रहे, तब उनका बड़प्पन समझ में आता है। मेरे लिए यही दुर्भाग्य की बात है।" अर्जुन ने कहा—"महाराज ! श्रीकृष्ण मेरे आपके जैसे दो हाथ और पैर लेकर आये, अतः हमने उन्हें मनुष्य ही समझा और व्यवहार भी उनके साथ वैसा ही किया। भय्या उनकी प्रभुता की झांकी तो अनेक बार की, किन्तु मैं इतना मढ़ हूं कि भूल जाता हूं और सखा श्रीकृष्ण को ही

देखता हूं। मनुष्य वास्तव में कितना पामर है कि प्रभुता देखने के लिए चार हाथ और चार पैर की अपेक्षा रखता है।"

"भाई अर्जुन !" युधिष्ठिर बोले, "ईश्वर के सभी अवतार अपने जीवन-काल में तो शायद ही पहचाने जाते हैं। बाकी इनके भाग्य में तो दुःख और निन्दा ही लिखी रहती है। श्रीकृष्ण को भी कितने ही लोग धूर्त कहते थे।! जरासंध और शिशुपाल ने क्या कुछ बाकी रखा था ? और दुर्योधन ? उसने तो श्रीकृष्ण को कैद तक करने की तैयारी की थी ?

"किन्तु हम भी उनको बराबर नहीं पहचान सके, यही नवीनता है।" अर्जुन ने कहा।

"अर्जुन !" युधिष्ठिर ने कहा, " तू यह न समझ कि कुरुक्षेत्र का युद्ध हमने जीता है। यह तो श्रीकृष्ण का प्रताप था, अन्यथा भीष्म और द्रोण जैसे एक दिन में हमारा संहार कर डालते।"

"यही बात है, बड़े भय्या। देखो न, यही मेरा गाण्डीव, क्या आज हाथ में लकड़ी के टुकड़े की भांति नहीं पड़ा रहा ?" अर्जुन बोला।

"अर्जुन !" युधिष्ठिर ने कहा, ऐसे श्रीकृष्ण के कुल को भी काल खा गया तो अब अपने को चेत जाना चाहिए। गांडीवधारी अर्जुन का गाण्डीव हाथ में पड़ा रह जाय और लुटेरे श्रीकृष्ण की स्त्रियों को लेकर भाग जायं तो अब हमें संभल जाना चाहिए कि हमारा समय भी पूरा हो चुका।"

"मुझे भी ऐसा ही दिखाई देता है।" अर्जुन बोला।

"हमारे बोये ईर्ष्या-द्वेष के बीज जगत में उग उठे।" युधिष्ठिर बोले—"कलियुग का प्रभाव चारों ओर फैलता जा

रहा है। मानो अपना जन्म-कार्य पूरा हो गया हो, इस प्रकार शस्त्र अपने को छोड़ते जा रहे हैं। फिर भी हम न चेतेंगे तो और कब चेतेंगे ?"

"मुझे तो आज यह स्पष्ट दिखाई दे रहा है। अब जगत में हमारा जीवित रहना निरर्थक है। और इस सत्य को जान लेने के बाद भी जो लोग देह से चिपटे रहते हैं, उन लोगों को नई दुनिया एक तरफ निकाल फेंकती है और वे वहां पड़े-पड़े नष्ट हो जाते हैं।" युधिष्ठिर बोले—"अर्जुन ! जीवन के किनारे पर इस प्रकार पड़े-पड़े सड़ जाने की अपेक्षा क्या यह अधिक अच्छा नहीं होगा कि हम स्वयं संसार को छोड़कर निकल पड़ें और जीवन के ध्येय की खोज में देह को समाप्त कर दें।"

"महाराज !" अर्जुन बोला—मुझे तो अब यह जीवित रहना ही पसन्द नहीं आता। मन में ऐसी भावना उठती रहती है कि किसी अगम्य प्रदेश में जाकर इस रहस्य को प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाय।

"तो अर्जुन ! अब परीक्षित बड़ा हो गया है। यह मुकुट उसके सिर पर रखकर मैं चल दूं।" युधिष्ठिर बोले—"भीमसेन से भी तो बात कर लेनी पड़ेगी न?"

"भाई साहब, भीमसेन तो कभी का जीवन से उकता गया है। वह तो कहता था कि मुझे कुछ नहीं सूझेगा तो किसी दिन आत्म हत्या कर लूंगा।" अर्जुन बोला।

"द्रौपदी तो तैयार ही है। युधिष्ठिर बोले।

"और नकुल-सहदेव के लिए भी यही बात है।" अर्जुन ने वाक्य पूरा किया। "आप आज्ञा दें इतनी ही देर है।

पांचों पाण्डव, छठी द्रौपदी, सातवाँ एक कुत्ता, हस्तिनापुर

से निकले और उत्तर में हिमालय की ओर चले।

रास्ते में द्रौपदी गिरी, नकुल, गिरा, सहदेव गिरा, अर्जुन गिरा और भीमसेन भी गिरा। किन्तु हरेक की देह पर एक-एक गर्म आंसू डालते हुए धर्मराज युधिष्ठिर आगे बढ़ते ही गये। हिमालय के हिमाच्छादित शिविर उन्हें बुला रहे थे। वह कुत्ता उनके पीछे-पीछे चला जा रहा था।

हिमालय में बहुत दूर निकल गये, तो उन्होंने देखा कि एक रमणीक स्थल के पास देवराज इन्द्र विमान लेकर उनको बुलाने आये हैं।

"महाराज युधिष्ठिर! यह विमान आपके लिए है। स्वर्ग में देवता आपकी राह देखते हैं, अतः तुरन्त विमान में बैठिये।" कहकर देवराज ने उन्हें विमान में बैठने के लिए निमन्त्रित किया।

"देवराज!" युधिष्ठिर वन्दना करते हुए बोले—"वन्दन करता हूं। इस कुत्ते को पहले बिठाओ, इसके बाद मैं भी बैठता हूं।"

"युधिष्ठिर!" इन्द्र ने तुरन्त ही कहा, "कुत्तों को स्वर्ग में आने का अधिकार नहीं है, अतः इसे विमान में नहीं लिया जा सकता। आप अकेले आइये।"

युधिष्ठिर ने तुरन्त ही कठोरतापूर्वक उत्तर दिया, "तो देवराज इन्द्र! इस विमान को वापस ले जाइये। इस कुत्ते को छोड़कर मैं विमान में नहीं आ सकता।"

"राजन! आप यह क्या कहते हैं? सब देवता आपके दर्शन की प्रतीक्षा में बैठे हैं। आपने भीम और अर्जुन-जैसे भाइयों को छोड़ा, पाञ्चाली जैसी पत्नी को छोड़ा और एक कुत्ते को नहीं

छोड़ सकते ?" इन्द्र ने कहा ।

"देवेन्द्र ! यह क्यों नहीं पूछते कि यदि भीम-अर्जुन जैसे भाइयों को छोड़ सकते हो और पाञ्चाली-जैसी पत्नी को छोड़ सकते हो तो क्या स्वर्ग को नहीं छोड़ सकोगे ?" युधिष्ठिर बोले, "भीम, अर्जुन और पाञ्चाली को मैंने नहीं छोड़ा, उनको छूटना पड़ा है। यह कुत्ता ठेठ हस्तिनापुर से हमारे साथ है, अतः मैं इसे नहीं छोड़ सकता ।"

"राजन !" इन्द्र फिर कहने लगे, "ऐसे क्षुद्र प्राणी की खातिर आप स्वर्ग आने का अमूल्य अवसर खो रहे हैं, किन्तु इसमें कितनी बुद्धिमत्ता है, इसका विचार कर लीजिए ।"

"देवराज !" युधिष्ठिर बोले, "यह कहने का कोई अर्थ नहीं है कि मैं स्वर्ग में आने का अमूल्य अवसर खो रहा हूं । इन्द्रदेव ! आज से बीस-पच्चीस वर्ष पहले आपने ऐसा कहा होता तो मैंने विचार भी किया होता। उस समय अपना धर्म शास्त्रों और सत्पुरुषों के पास से निश्चय किया था। उसके बाद हस्तिनापुर के सिंहासन पर मैंने अपने जीवन को सान पर चढ़ा लिया है और अपने जीवन तथा धर्म को नए रंग में रंग लिया है। देवराज! एक दिन ऐसा भी था, जब मुझे स्वर्ग आकर्षित कर सकता और ऐसी स्थिति थी कि स्वर्ग न मिलने पर मुझे दुःख होता । अब आज स्वर्ग तो मेरे अन्तर में बैठा है। आपका स्वर्ग मिलने न मिलने की मुझे परवा नहीं रही। एक दिन था कि मैं स्वर्ग-प्राप्ति के लिए हाथ पांव मारता था और आप-जैसे कितने ही देवताओं की पूजा करता था। देवेन्द्र ! अब युधिष्ठिर ने बाहर हाथ पांव मारना बन्द कर दिया है और स्वर्ग तथा मोक्ष को

अपने अन्दर ढूंढ़ता हूं। अतः देवराज, आप शौक से पधारिये। युधिष्ठिर और उसका कुत्ता अपना मार्ग स्वयं निकाल लेंगे।"

"तो आपको लिये बिना ही जाना होगा?" इन्द्र ने पूछा।

"इसका निर्णय तो आप कीजिये। यह निश्चित है कि मैं कुत्ते बिना अकेला नहीं जाऊंगा।" युधिष्ठिर ने कहा—"देवराज मुझे क्षमा करेंगे। आप मुझे लिए बिना जाओगे तो भी मुझे निश्चय है कि आपको वापस आना पड़ेगा। आप मुझे स्वर्ग में ले जाते हैं, कारण मेरी आन्तरिक तैयारी इस लोक में आने की हो चुकी है और यदि ऐसा ही है तो देवराज, मुझे क्षमा करें। आपकी शक्ति नहीं कि आप मेरे इस अन्तर के अधिकार को छीनकर जा सकें। स्वर्गादि आपकी कृपा का फल नहीं है, बल्कि मेरे अधिकार और ईश्वर की कृपा का फल है; अतः उसे छीन लेने की किसी की ताकत नहीं है। किन्तु ऐसा कहने पर भी यदि आप छीन सकते हों तो मुझे कुछ भी दुःख नहीं होगा। आज मेरे इस साथी की खातिर स्वर्ग छोड़ देने से आनन्द है, वह स्वर्ग में भी नहीं हो सकता।" युधिष्ठिर ने स्पष्ट कह दिया और पीछे मुड़कर कुत्ते की ओर देखते हैं तो वहां कुत्ते के बजाय साक्षात् धर्मराज खड़े थे।

युधिष्ठिर बोल रहे थे तो उन पर आकाश से पुष्प-वृष्टि हुई। हजारों विमान आकाश में उड़ने लगे और धीर गम्भीर आवाज में धर्मराज ने कहना शुरू किया—"बेटा युधिष्ठिर! मैं धर्मराज हूं—तेरा पिता। तूने अपने जीवन में धर्म का आचरण करके बता दिया, अतः तुझपर मैं प्रसन्न हूं। मैं जानता हूं कि तूने अपने जीवन में धर्माधर्म का निर्णय करते समय कितनी ही बार भूलें की हैं। किन्तु प्रिय पुत्र! हस्तिनापुर के सिंहासन

पर तुझे जो धर्मदर्शन हुआ, वह पहले कभी नहीं हुआ था। इस के पहले तू धर्मराज तो था ही, किन्तु चक्रवर्ती होने के बाद तेरा धर्मशास्त्रों का धर्म स्वानुभवगत हो गया। हस्तिनापुर के राज्य ने तेरे जीवन के केन्द्र-स्थान को, जो बाहर दिखाई दे गया था, तुझे अन्दर दिखाया, और तू मानव-मात्र के हृदय में रहने वाले एक परम धर्म को वास्तव में पहचानने लगा। बेटा चल। स्वर्ग तुझपर किसी की कृपा नहीं, बल्कि तेरा अधिकार है।"

"धर्मराज! इन्हें तो स्वर्ग का त्याग करना है।" इन्द्र ने कहा।

"देवराज! स्वर्ग जिसकी गोद में पड़ा हो, उसको हम लोग कैसे बहकाकर वश में कर सकते हैं? हम तो भयभीत लोगों के देवता हैं। हमारा बल मानव के भय पर निर्भर करता है। किन्तु जिसने धर्म का रहस्य जान लिया हो, वह हमसे अथवा स्वयं ईश्वर से कैसे डरेगा? उसे तो धर्म और आत्मा की एक प्रकार की भूख होती है। इस भूख की तृप्ति के लिए कहो अथवा परमात्मा के लिए कहो, वह धर्म का सेवन करता है। इस प्रकार के धर्म-पालन में आत्म-तृप्ति के सिवाय और कोई स्वार्थ नहीं होता। युधिष्ठिर इसी कारण तुम्हारी धमकी के वश नहीं हुए।" धर्मराज ने स्पष्टीकरण किया।

और तीनों विमान में बैठकर स्वर्ग सिधारे।

□□

महाभारत पात्र माला

□□

1. सूतपुत्र कर्ण
2. पांचाली द्रौपदी
3. दुर्योधन
4. महावीर भीमसेन
5. महारथी अर्जुन
6. कुन्ती : गांधारी
7. द्रोण : अश्वत्थामा
8. पितामह भीष्म
9. धृतराष्ट्र
10. श्रीकृष्ण
11. धर्मराज युधिष्ठिर

सस्ता साहित्य मण्डल